इस्लाम
मानवाधिकारों का रक्षक

मौलाना सैयद जलालुद्दीन उमरी

अनुवाद

मनाज़िर हक़

विषय सूची

दो शब्द

'मानवाधिकारों की रक्षा' आज पूरी दुनिया में चर्चा का विषय है। विभिन्न देशों में सरकारी और ग़ैरसरकारी संगठनों द्वारा मानवाधिकारों की निगरानी की जाती है और इनकी सुरक्षा के प्रबन्ध किए जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर इनकी सुरक्षा के लिए शक्ति का प्रयोग भी किया जाता है। परन्तु देखने में आया है कि मानवाधिकारों की सुरक्षा के नाम पर भी इन अधिकारों का हनन होता है।

मानवाधिकारों के सम्बन्ध में इस्लाम ने आज से पन्द्रह सौ साल पहले ही जो व्यापक अवधारणाएँ प्रस्तुत की थीं वे आज के आधुनिक युग में प्रस्तुत की जानेवाली अवधारणाओं से कहीं अधिक पूर्ण एवं सारगर्भित हैं। इस्लाम केवल पूजा-पाठ करने और कुछ रस्मों के मना लेने का ही नाम नहीं है। बल्कि यह ईश्वर की ओर से अवतरित जीवन व्यतीत करने का पूर्ण विधान है। इस्लाम ने मनुष्य का इस ओर भी मार्गदर्शन किया है कि उस पर एक-दूसरे के प्रति क्या अधिकार और कर्तव्य हैं। इस्लाम मनुष्य को जहाँ उसके अधिकार बताता है वहीं उसे उसके कर्तव्यों से भी अवगत कराता है। प्रस्तुत पुस्तक में केवल अधिकारों की चर्चा की गई है।

यह किताब 'इस्लामः मानवाधिकारों का रक्षक' वर्तमान इस्लामी जगत के महान विद्वान मौलाना सैयद जलालुद्दीन उमरी साहब की उन बहुत-सी किताबों में से एक है जिनको लोगों ने बहुत पसन्द किया है। इससे पहले यह किताब उर्दू में 'इस्लामः इनसानी हुक़ूक़ का पासबाँ' नाम से प्रकाशित हो चुकी है और उसके कई एडीशन भी निकल चुके हैं।

यूँ तो इस विषय पर बहुत-सी अच्छी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं, लेकिन मौलाना ने क़ुरआन और हदीस की रौशनी में मानवाधिकारों की जो व्याख्या की है वह अनुपम है। इसी के साथ-साथ इस सम्बन्ध में इस्लाम पर जो आक्षेप किए जाते रहे हैं उनका उत्तर भी भली प्रकार दिया गया है।

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (रजि०) हिन्दी भाषा में इस्लाम से सम्बन्धित पुस्तके प्रकाशित करने के शुभ कार्य में लगा हुआ है। इस पुस्तक को हिन्दी में प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष हो रहा है। कोशिश की गई है कि इसमें प्रूफ़-आदि की कोई त्रुटि न रहने पाए। किन्तु फिर भी यदि कोई त्रुटि रह जाती है तो पाठकगण हमें सूचित करें, ताकि उसका सुधार किया जा सके। हम उनके आभारी होंगे। आशा है कि यह पुस्तक अपने विषय पर बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
अध्यक्ष
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट, दिल्ली

22/3/2010

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

शुरू अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान और रहम करनेवाला है।

प्राक्कथन

इस दुनिया में जो भी इनसान पैदा होता है, अपने कुछ अधिकार लेकर पैदा होता है। किसी भी व्यक्ति को इन अधिकारों का न मिलना कोई साधारण बात नहीं है। ये अधिकार ही इनसान को बुलन्दी की ओर ले जाते हैं। अगर ये उससे छिन जाएँ तो वह अपमानित ज़िन्दगी गुज़ारने पर मजबूर हो जाता है और उसके विकास की सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

ये अधिकार क्या हैं? क्या सभी इनसानों के अधिकार समान हैं या उनमें कुछ अन्तर है? ये अधिकार कैसे प्राप्त किए जाएँ और इनकी सुरक्षा की क्या व्यवस्था है? वर्तमान समय में ये सवाल, कुछ ऐतिहासिक कारणों से सम्पूर्ण वातावरण में गूँज रहे हैं। विभिन्न देशों में इन अधिकारों की स्थिति का जायज़ा लिया जाता है, क़ानून और अदालत के द्वारा इनकी सुरक्षा के उपाय भी किए जाते हैं। और इसके लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियों का भी प्रयोग किया जाता है। सवाल यह है कि ये प्रयास किस हद तक पक्षपात-रहित और गरोहबन्दी से पाक हैं? विश्व-स्तर पर इन अधिकारों की निगरानी करनेवाले (लोग या संस्थाएँ) इन प्रयासों को अधिकारों के उल्लंघन का बहाना तो नहीं बना रहे हैं?

मानवाधिकार के सम्बन्ध में इस्लाम की अवधारणा बिलकुल स्पष्ट है और इस सिलसिले में इसकी जो भूमिका रही है वह भी सबके सामने है। इस्लाम ने व्यक्ति और समूह तथा विभिन्न स्तर के वर्गों के अधिकार निर्धारित किए हैं और व्यवहारतः इन अधिकारों को उपलब्ध कराया है। जिन व्यक्तियों और वर्गों के अधिकारों का हनन हो रहा था उनके समर्थन में इस्लाम खड़ा हुआ और जो लोग इन अधिकारों का हनन कर रहे थे उनकी इसने घोर निन्दा की, उन्हें दुनिया और आख़िरत के घाटे की चेतावनी दी और समाज को उनके साथ अच्छे व्यवहार की शिक्षा एवं प्रेरणा दी तथा हमदर्दी और मुहब्बत का माहौल बनाया।

क़ुरआन मजीद मानवाधिकारों के इन प्रयासों की बुनियाद है और हदीसों में इनकी शाब्दिक एवं व्यावहारिक व्याख्या मौजूद है। क़ुरआन और हदीस की शैली प्रचलित क़ानूनी किताबों जैसी नहीं है। क़ानून की किताबें अधिकारों का उल्लेख 'धाराओं' के क्रम में करती हैं और आवश्यकतानुसार उनकी व्याख्या करती हैं। क़ुरआन मजीद की शैली नैतिक भी होती है और क़ानूनी

भी। वह जब नैतिकता का ज़िक्र करता है तो अधिकारों को पूरा करने को चरित्र एवं आचरण की अनिवार्य माँग के रूप में प्रस्तुत करता है। वह उन लोगों की प्रशंसा करता है जो प्रत्येक व्यक्ति का हक़ अदा करते हैं और उन्हें दुनिया व आख़िरत की सफलता की ख़ुशख़बरी भी देता है। इसके विपरीत जहाँ ज़ुल्मो-सितम होता है और अधिकारों का हनन होता है वहाँ वह उसके संगीन नतीजों से आगाह करता है और उसपर जहन्नम की चेतावनी देता है। इसके साथ ही वह उन अधिकारों का क़ानूनी शैली में भी ज़िक्र करता है। यह भी देखा जाता है कि वह किसी अधिकार का एक पहलू एक जगह और दूसरा पहलू दूसरी जगह बयान करता है।

हदीसों की भी यही शैली है। इसलिए किसी अधिकार के तमाम पक्षों को जानने के लिए क़ुरआन और हदीस के सम्पूर्ण संग्रहों को देखना पड़ता है।

मुझे इस विषय से काफ़ी समय से दिलचस्पी रही है। इसके कुछ पहलुओं पर मैंने अपने विभिन्न लेखों में प्रकाश डालने का प्रयास किया है। प्रस्तुत पुस्तक इसी सिलसिले की एक कड़ी है। इसमें इस विषय से सम्बन्धित इस्लाम की शिक्षाएँ और मार्गदर्शन सीधे क़ुरआन और हदीस से पेश करने की कोशिश की गई है। इस विषय पर प्राचीन उलमा और फ़ुक़हा के अद्वितीय योगदानों से भी यथासम्भव लाभ उठाया गया है। मानवाधिकार के सम्बन्ध में आधुनिक जानकारियाँ Dr. S. Subramaniam की किताब 'Human Rights : International Challanges' (Part I-II) से ली गई हैं।

इस पुस्तक की शैली ख़ालिस क़ानूनी नहीं है बल्कि जिस अधिकार का ज़िक्र किया गया है क़ुरआन व हदीस की रौशनी में उसकी व्याख्या की गई है। समाज पर पड़नेवाले उसके प्रभाव का भी उल्लेख आवश्यकतानुसार किया गया है। नैतिकता और क़ानून का रिश्ता बहुत मज़बूत है। किसी व्यक्ति या समाज में नैतिकता की भावना प्रबल हो जाए तो वह क़ानून से ज़्यादा कारगर होती है और आदमी बग़ैर किसी दबाव के, ख़ुशी-ख़ुशी हर एक का हक़ अदा करने लगता है।

कोशिश इस बात की रही है कि विषय से सम्बन्धित इस्लाम की प्रामाणिक शिक्षाएँ ही पेश की जाएँ ताकि किसी भी अवसर पर आत्मविश्वास के साथ उनका हवाला दिया जा सके। इस मामूली कोशिश में बहुत-सी त्रुटियों की सम्भावना है। विद्वानों से निवेदन है कि वे उनसे अवश्य अवगत कराएँ। अल्लाह इसका उनको अच्छा बदला देगा और मैं उनका आभारी हूँगा

—जलालुद्दीन उमरी

13 नवम्बर, 2004 ई.

मानवाधिकारों की परिकल्पना

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इस दुनिया में ताक़तवर और कमज़ोर दोनों तरह के इनसान आज भी हैं, कल भी थे और भविष्य में भी रहेंगे। मानव-प्रकृति यह चाहती है कि ताक़तवर अपनी ताक़त का ग़लत इस्तेमाल न करे तथा कमज़ोरों के साथ प्रेम, सदभाव और सहयोग का रवैया अपनाए। जो ताक़तवर है उसकी ताक़त कमज़ोर की कमज़ोरी दूर करने और उसे ऊपर उठाने में ख़र्च हो। ताक़तवर उसे इस योग्य बनाए कि ज़िन्दगी की दौड़ में वह पीछे न रह जाए। लेकिन अतीत गवाह है और वर्तमान में प्रायः देखने को मिलता रहता है कि अधिकतर हालात में प्रकृति की यह माँग पूरी नहीं हुई। ताक़तवर के हाथ में अनगिनत अधिकार जमा होते चले गए, कमज़ोर को उनका बहुत थोड़ा हिस्सा मिला या बिल्कुल नहीं मिला। ताक़तवर को ताक़त के नशे में अपनी ज़िम्मेदारियाँ याद नहीं रहीं और कमज़ोर ज़िम्मेदारियों के बोझ तले दबता चला गया। ताक़तवर ने अपने अधिकारों का खुलकर इस्तेमाल किया जबकि कमज़ोर उन अधिकारों से वंचित रहा। कभी तो उसे मज़बूत और ताक़तवर हाथों ने इस प्रकार दबाया और कुचला कि उसे सिसकने, तड़पने और फ़रियाद करने की भी इजाज़त नहीं दी गई। इस रवैये का परिणाम यह हुआ कि विभिन्न ज़मानों में और विभिन्न इलाक़ों में अलग-अलग वर्ग अस्तित्व में आते चले गए। एक वर्ग उन लोगों का था जो अपने को अधिकारों का जन्मजात स्वामी समझता था और दूसरा वर्ग उन लोगों का था जिनके कुछ अधिकार न थे बल्कि उनके हिस्से में सिर्फ़ अपने कर्तव्य की पूर्ति करना ही आया था। पहला वह वर्ग था जो आसपास के सम्पूर्ण संसाधनों का स्वामी था और दूसरा वह वर्ग था जो इन सबसे वंचित था। एक पक्ष के पास आराम, राहत, ऐश और विलास का ठाठ था तो दूसरा पक्ष अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए तड़प रहा था।

शक्तिशाली वर्ग के हाथ में सत्ता की बागडोर तो थी ही, क़ानून, ज्ञान एवं कला, वित्तीय संसाधन, सभ्यता और संस्कृति हर क्षेत्र में उसी का वर्चस्व भी था। इस वर्ग से सल्तनतों के बादशाह, उच्च पदस्थ अधिकारी, सेनाध्यक्ष, ज्ञान एवं कला के विशेषज्ञ, सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माता और समाज को रूप-दिशा देनेवाले पैदा हुए और ये ही हर चीज़ के मालिक बन बैठे। इसके विपरीत कमज़ोर वर्ग इनमें से किसी चीज़ की अपने लिए कल्पना भी नहीं कर सकता था। वह यदि ज़िन्दा भी था तो केवल इसलिए कि शक्तिशाली वर्ग को उसकी ज़रूरत थी। वह बेजान मशीन की तरह शक्तिशाली वर्ग की सेवा में जुटा था और शक्तिशाली को और ज़्यादा शक्तिशाली बनने में सहयोग कर रहा था। ताक़तवर ऐसे कई अधिकारों का मालिक बन बैठा था, जिनका कोई औचित्य नहीं था। इधर कमज़ोर अपने जाइज़ (वैध) अधिकार से भी वंचित था। वह इसके लिए संघर्ष क्या करता, इसकी चर्चा भी करने से डरता था। ताक़तवर और कमज़ोर के बीच इस खाई का सिलसिला कई बार तो इतना लम्बा खिंचा कि दोनों वर्गों ने इसे ही प्रकृति का विधान समझ लिया। शक्तिशाली वर्ग ने समझा या उसके दिमाग़ में यह बैठा दिया गया कि जो कुछ उसके पास है उसके व्यक्तिगत अधिकार के कारण है और बिना किसी साझे के वह अकेला इसका स्वामी है। कमज़ोर अपनी बदक़िस्मती पर चुप बैठा रहा कि यही उसके भाग्य का लिखा है। कभी इन वर्गों के बीच कशमकश और संघर्ष का भी वातावरण बना, लेकिन कमज़ोर की स्थिति में ज़्यादा बदलाव देखने में नहीं आया। यह तस्वीर जितनी भयानक है उतना ही भयानक यह प्रश्न भी है कि क्या मानव-जाति का इतिहास ज़ुल्म-सितम ही का इतिहास है? क्या इसने न्याय-इनसाफ़ और एहसान-उपकार का सुहाना मौसम नहीं देखा? क्या इस लम्बी अवधि में आदम की औलाद की बड़ी संख्या अपने अधिकारों से बेख़बर और अनभिज्ञ ही रही, या इन अधिकारों से वंचित रहना ही उसके हिस्से में आया? क्या उनके अधिकारों के समर्थन में कभी कोई आवाज़ बुलन्द नहीं हुई और उनके लिए संघर्ष करनेवाले तथा हक़दार को हक़ दिलानेवाले पैदा ही नहीं हुए?

इसका उत्तर यह दिया जाता है कि दुनिया ने न्याय और इनसाफ़

की मिसालें ज़रूर देखीं लेकिन इतिहास अधिकतर ज़ुल्म का ही लिखा जाता रहा है। सत्ताधारी और शक्तिशाली वर्ग इसके काले पन्नों में वृद्धि ही करते रहे हैं। इसके नतीजे में ज़्यादा समय नहीं गुज़रा, केवल कुछ ही शताब्दियों पहले मानवाधिकार की अवधारणा तीव्रता से उभरी। इसके लिए संघर्ष शुरू हुआ और इसने बहुत जल्द एक जन-आन्दोलन का रूप ले लिया। इसका केन्द्र यूरोप, विशेषकर ब्रिटेन और फ्रांस थे। बाद में अमेरिका ने भी इस दिशा में पहल की।

कहा जाता है कि दुनिया के ज्ञात इतिहास में और धार्मिक ग्रंथों में इनसान के मौलिक अधिकारों के हवाले तो मिलते हैं, परन्तु इन्हें इस नाम से नहीं जाना जाता है। आधुनिक इतिहासकारों के निकट मानवाधिकार की अवधारणा से दुनिया Magna Carta (महाधिकार-पत्र) के द्वारा परिचित हुई। यह ब्रिटेन के सम्राट जॉन (John) के काल में 15 जून 1215 ई॰ को स्वीकृत हुआ। इस घोषणा-पत्र के सम्बन्ध में यह ख़याल सही नहीं है कि इसके द्वारा ब्रिटेन की जनता को व्यक्तिगत एवं राजनीतिक आज़ादी मिल गई। वास्तव में यह घोषणा-पत्र सम्राट से कुछ वर्गों के अधिकारों पर विचार करने का आवेदन मात्र था। इससे ज़्यादा इसकी कोई हैसियत नहीं थी।

पश्चिम में इस सिलसिले में और प्रयास भी होते रहे हैं—

- ❖ सम्राट कॉंकर्ड द्वितीय (Concard II) ने एक घोषणा-पत्र के द्वारा पार्लियामेंट के अधिकार निश्चित किए।
- ❖ 1188 ई॰ में सम्राट अलफ़ांसो नवम् (Alfanso IX) से अवैध क़ैद के निराधार होने की नीति स्वीकार कराई गई।
- ❖ 1766 ई॰ में फ्रांस के प्रसिद्ध विचारक रूसो (Rousseaue) ने 'नागरिक संधि' (The Social Contact) नामक पुस्तक लिखी। उसे फ्रांस की क्रान्ति का सूत्रधार माना जाता है। उसकी पुस्तक के आधार पर 1789 ई॰ में फ्रांस का 'मानवाधिकार का घोषण-पत्र' (Declaration of the Rights of Man) सामने आया।
- ❖ 1776 ई॰ में अमेरिकी प्रान्त वर्जीनिया में आयोजित एक सम्मेलन में George Mosion का तैयार किया हुआ मानवाधिकार का

घोषणा-पत्र स्वीकृत किया गया।

इस सम्बन्ध में और भी उल्लेखनीय प्रयास हुए हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ भी विभिन्न अवसरों पर इस सिलसिले में प्रस्ताव पारित करता रहा है। अन्त में 10 दिसम्बर 1948 ई॰ को उसने मानवाधिकार का अन्तर्राष्ट्रीय घोषणापत्र (The Universal Declaration of Human Rights) पास किया। दुनिया के अधिकतर राष्ट्रों ने इसका समर्थन किया, जिन राष्ट्रों ने समर्थन नहीं किया उन्होंने भी इसका विरोध नहीं किया। इस दृष्टि से इसे सम्पूर्ण विश्व का सर्वसम्मत घोषणा-पत्र कहा जाता है। कोई भी सरकार इसका इनकार अथवा विरोध नहीं कर रही है। इसे मानवाधिकार के इतिहास में एक क्रान्तिकारी क़दम समझा जाता है।

मानवाधिकार के इस अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा-पत्र में व्यक्ति की स्वतन्त्रता, न्याय और समता को केन्द्रीय हैसियत प्राप्त है। यह आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के साथ राजनीतिक अधिकारों की भी बात करता है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार स्वीकार किया गया है कि उसके साथ समानता का व्यवहार हो। किसी को किसी से श्रेष्ठ अथवा निम्न न समझा जाए, व्यक्ति को जान और माल की सुरक्षा प्राप्त हो, उसपर किसी प्रकार का अत्याचार और हिंसात्मक कार्रवाई न हो, उसे न्याय और इनसाफ़ मिले। इसी प्रकार आस्था और मज़हब या मत अभिव्यक्ति की आज़ादी, संगठन बनाने, यात्रा करने और अपना आवास बदलने तथा अपनी इच्छा से शादी-विवाह करने और ख़ानदान बसाने को उसका हक़ (अधिकार) माना गया है। शिक्षा, नौकरी, शासन प्रणाली में सम्मिलित होने, आराम-व-राहत और निजी जीवन की गोपनीयता को भी उसका बुनियादी हक़ (मौलिक अधिकार) घोषित किया गया है।

इस घोषणा-पत्र की यह ख़ूबी समझी जाती है कि यह व्यक्ति को उसके मौलिक अधिकार प्रदान करता है और इसमें शासक वर्ग की निरंकुशता से नागरिकों को सुरक्षित रखने के उपाय किए गए हैं। जनता को शक्ति का स्रोत और शासकों को उनके सामने जवाबदेह क़रार दिया गया है। न्याय और इनसाफ़ के मिलने को आसान बनाने की कोशिश की गई है और इस ओर ध्यान दिलाया गया है कि व्यक्ति को शिक्षा,

विकास और ख़ुशहाली के अवसर उपलब्ध कराए जाएँ।

इसका दूसरा पहलू यह है कि इसमें कुछ बुनियादी ख़ामियाँ (त्रुटियाँ) भी हैं। उनसे नज़र नहीं बचाई जा सकती। उन ख़ामियों के कारण इससे अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो पा रहे हैं।

इस घोषणा-पत्र के पीछे कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो इसे सुचारु रूप से लागू कराए। दूसरे शब्दों में कोई ऐसी सर्वोच्च शक्ति नहीं है जो किसी क़ौम को इसका पाबन्द बनाए। इस दृष्टि से कभी-कभी इसकी हैसियत मात्र नसीहत और उपदेश तथा नैतिक शिक्षा की बनकर रह जाती है। अतः उन देशों में भी मानवाधिकार-उल्लंघन की घटनाएँ प्रायः होती रहती हैं जो इस घोषणा-पत्र को पवित्र ग्रंथ की तरह सम्मान देते हैं और इसके गुण गाते रहते हैं। इन अधिकारों की निगरानी करनेवाली दुनिया में बहुत सी संस्थाएँ काम कर रही हैं और लाभदायक सेवा प्रदान कर रही हैं। उनमें एक European Court of Human Rights है। इसमें यूरोप के देश मानवाधिकार-उल्लंघन के मुक़द्दमे दर्ज कराते रहते हैं। उनकी संख्या सैकड़ों नहीं, हज़ारों तक पहुँच जाती है।

इन सभ्य देशों में आन्तरिक रूप से मानवाधिकार का उल्लंघन जिस पैमाने पर होता है उससे कहीं ज़्यादा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वे इस जुर्म को स्वयं करते हैं। शक्तिशाली राष्ट्रों को, जिन्हें विकसित समझा जाता है, इन अधिकारों का पाबन्द बनाना कमज़ोर राष्ट्रों के बस की बात नहीं है। अलजीरिया, फ़लस्तीन, कोसोवो, बोसनिया, इराक़ आदि इसकी प्रमुख मिसालें हैं। फ़लस्तीन में जिस प्रकार मानवाधिकारों को पददलित किया जाता रहा है और जिसका सिलसिला आज भी जारी है उसे संयुक्त राष्ट्र संघ की जाँच टीम के सदस्यों ने स्वीकार किया है।

यह घोषणा-पत्र व्यक्ति एवं राज्य के अधिकारों को ठीक-ठीक निर्धारित नहीं करता। इससे यह बात स्पष्ट नहीं है कि व्यक्ति के अधिकारों की सीमाएँ क्या हैं और कहाँ से राज्य के अधिकार शुरू होते हैं?

मज़हब के मामले में भी इसका रवैया अस्पष्ट है। इसमें व्यक्ति को किसी भी मज़हब को अपनाने और उसपर अमल करने का हक़ दिया गया है, परन्तु इस हक़ीक़त को नज़र-अन्दाज़ कर दिया गया है कि

मज़हब इनसान के अधिकार एवं कर्त्तव्य का भी निर्धारण करता है। सवाल यह है कि क्या मज़हब उनपर अमल कर सकता है? यदि नहीं कर सकता या विशेष सीमा के अन्तर्गत ही कर सकता है, तो मज़हबी आज़ादी का क्या अर्थ है?

यह घोषणा-पत्र इस सोच के साथ वुजूद में आया है कि इनसान आज़ाद है और वह अपने लिए ख़ुद क़ानून बना सकता है। उसे किसी आसमानी हिदायत की ज़रूरत नहीं है। या इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह एक ग़ैर-मज़हबी अथवा सेक्यूलर (धर्मनिरपेक्ष) घोषणा-पत्र है। इसमें स्वाभाविक रूप से सेक्यूलर विचारधारा के उभरने, इस प्रकार के आन्दोलनों को फलने-फूलने और इससे मेल खाते चरित्र के प्रचार-प्रसार के ज़्यादा अवसर हैं। व्यवहारतः यही हो भी रहा है। विचार की स्वतन्त्रता और इनसान की आज़ादी के नाम पर हर मामले में नास्तिकता, ईश-विमुखता, वह्य (ईश्वरीय सन्देश का अवतरण), रिसालत (अल्लाह के रसूलों पर ईमान) और आख़िरत (परलोक) के इनकार की मानसिकता काम कर रही है। अख़लाक़ को बिगाड़नेवाले कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं और दुनिया को एक ख़ास संस्कृति और कल्चर का आदी, बल्कि पाबन्द बनाने की भरपूर कोशिश हो रही है। इसे विकास एवं आधुनिकरण का नाम दिया जाता है। इसके विपरीत किसी धार्मिक आन्दोलन के चलाने और धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों के प्रचार-प्रसार के अवसर अति सीमित हैं। उनके विरोध में मीडिया के द्वारा वातावरण बनाया जाता है और उनकी घृणित छवि पेश की जाती है। दक़ियानूसियत एवं रूढ़िवादिता का आरोप लगाकर उन्हें अस्वीकार्य ठहराया जाता है और मौक़ा मिलने पर ताक़त के ज़रीए से उन्हें ख़त्म करने की साज़िशें की जाती हैं। विचार एवं मत-अभिव्यक्ति की आज़ादी के सारे दावे यहाँ हवा हो जाते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि आज मानवाधिकार की चर्चा हर तरफ़ है और इस सम्बन्ध में कुछ अच्छी और प्रशसंनीय कोशिशें भी हो रही हैं, लेकिन इसके साथ ही इस हक़ीक़त से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि इन अधिकारों का उल्लंघन भी आए दिन होता रहता है और इसे रोकने का कोई उपाय कामयाब नहीं हो रहा है।

इस्लाम अल्लाह का उतारा हुआ दीन (मज़हब) है। वह दुनिया और

आख़िरत (परलोक) की भलाई तथा कामयाबी की ज़मानत देता है। उसका एक पहलू यह है कि वह मानवाधिकारों का रक्षक और प्रहरी बनकर हमारे सामने आता है तथा इन अधिकारों के हनन को रोकने के प्रभावी उपाय अपनाता है। यह मात्र आस्था, प्रेम अथवा भावनात्मक सम्बन्ध की अभिव्यक्ति नहीं है बल्कि एक हक़ीक़त है। इस्लाम ने जिस व्यापकता, सूक्ष्मता, दूरदर्शिता और बारीकी से इसके हर पहलू पर रौशनी डाली है, उसकी मिसाल दुनिया के किसी घोषणा-पत्र या किसी संविधान में नहीं पाई जाती। साफ़ महसूस होता है कि दुनिया ने बहुत-से मामलात में जिस प्रकार इस्लाम से लाभ उठाया है उसी प्रकार इस मामले में भी वह उसकी ऋणी है। लेकिन इसे स्वीकारने की हिम्मत और शिष्टता अभी इसे प्राप्त नहीं है। इस्लामी विचारधारा का पूर्णतः अनुसरण (पालन) न होने के कारण वर्तमान मानस में उतार-चढ़ाव और असन्तुलन पाया जाता है। ज़रूरत है कि इसकी निशानदही की जाए और इस्लामी विचारधारा में जो सन्तुलन पाया जाता है उसे उभारा जाए।

☆☆☆

इस्लाम
मानवाधिकारों का रक्षक

बुनियादी अवधारणाएँ

इस्लाम इस सोच के ख़िलाफ़ है कि इनसान एक लम्बी अवधि तक अन्धकार-युग में रहा, फिर धीरे-धीरे उसे ज्ञान एवं विचार की रौशनी मिली। इस्लाम के निकट प्रथम इनसान (आदम अलैहिस्सलाम) भी अल्लाह की हिदायत के साथ ज़मीन पर आबाद हुआ। उसके बाद हर दौर में उसकी हिदायत और मार्गदर्शन का इन्तिज़ाम होता रहा। अल्लाह के पैग़म्बर (दूत) ने उसे अल्लाह के हक़ और अधिकारों और बन्दों के हक़ और अधिकारों से अवगत कराया। उन्होंने जहाँ एक ओर यह बताया कि इनसान पर अल्लाह का क्या हक़ (अधिकार) है वहीं दूसरी ओर अल्लाह के बन्दों अर्थात् इनसानों पर एक-दूसरे के प्रति अधिकारों और कर्त्तव्यों को भी स्पष्ट किया। उनकी शिक्षाओं में एक अल्लाह की इबादत से लेकर जीवन गुज़ारने की पद्धति अर्थात् शरीअत-व्यवस्था का उल्लेख भी था। यदि इनसान ने अल्लाह का हक़ पूरा नहीं किया तो पैग़म्बरों ने इसकी घोर निन्दा की, शिर्क (बहुदेववाद) को मिटाया, तौहीद (ऐकेश्वरवाद) को स्थापित किया। इनसान ने इनसान के अधिकारों को छीना तो उसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई। ज़ुल्म व नाइनसाफ़ी को मिटाने और न्याय व इनसाफ़ की स्थापना के लिए उनकी कोशिशें जारी रहीं। अल्लाह ने जब सत्ता की बागडोर उनके हाथ में दी तो हक़दार को उसका हक़ दिलाया और समाज में न्याय और इनसाफ़ को व्यावहारिक रूप में स्थापित किया। मानव-इतिहास के साथ वह्य और रिसालत का इतिहास भी जुड़ा हुआ है। इनकी अनदेखी करके इतिहास का अध्ययन अधूरा और आंशिक होगा।

इस्लाम ने इनसान को क्या-क्या अधिकार दिए हैं और किस हद तक दिए हैं इसका विस्तृत अध्ययन करने से पहले इनसान के सम्बन्ध

में इस्लाम के दृष्टिकोण को समझना होगा। क्योंकि ये सारे अधिकार उसी दृष्टिकोण को प्रतिबिम्बित करते हैं। ये अधिकार उस दृष्टिकोण के स्वाभाविक एवं तार्किक परिणाम के रूप में उभरते और उसी की बुनियाद पर व्यापक आकार लेते हैं। अतः पहले इस बात की कोशिश होगी कि इनसान के बारे में इस्लाम के दृष्टिकोण को स्पष्ट किया जाए, उसके बाद उसके अधिकारों का उल्लेख होगा।

1. अल्लाह ख़ालिक़ (पैदा करनेवाला) व मालिक (स्वामी) है

इस्लाम इस हक़ीक़त को पूरे ज़ोर के साथ पेश करता है और इसपर ईमान लाने की दावत देता है कि अल्लाह ही इस कायनात (सृष्टि/ब्रह्माण्ड) का ख़ालिक़ और मालिक है। ज़मीन, आसमान और यहाँ की हर चीज़ उसी की रचना है और वही इनका स्वामी है। इसमें कोई अन्य उसका साझीदार नहीं है। इनसान ज़मीन पर उसका ख़लीफ़ा और नायब है। (क़ुरआन, 2:30) इनसान का काम अल्लाह के आदेशों का पालन करना और उन्हें लागू करना है। इसी में उसकी परीक्षा है। इस हक़ीक़त पर ईमान लाने और इसे स्वीकार करने से सामाजिक जीवन में एक बहुत बड़ा क्रान्तिकारी परिवर्तन आता है। वह इस प्रकार कि इस दुनिया और यहाँ की हर छोटी-बड़ी चीज़ पर से किसी व्यक्ति, वंश या संस्था की इजारेदारी और स्वामित्व ख़त्म हो जाता है। इनसान यह मानकर ज़िन्दगी गुज़ारने पर मजबूर हो जाता है कि उसके पास जो कुछ है वह अल्लाह का दिया हुआ है। वास्तविक मालिक वही है। इनसान उसके इस्तेमाल में ईश्वर की इच्छा एवं आदेश का पाबन्द है। इसमें स्वच्छन्दता और मनमानी उसके लिए जाइज़ नहीं है। यहाँ जो व्यक्ति जिस हैसियत में है उसी हैसियत में उसका इम्तिहान हो रहा है। क़ुरआन के शब्दों में —

> "वही है जिसने तुम्हें ज़मीन में ख़लीफ़ा बनाया, और तुममें से कुछ लोगों के मुक़ाबले में कुछ लोगों के दरजे बुलन्द किए, ताकि तुम्हें उन चीज़ों में आज़माए जो उसने तुम्हें प्रदान की हैं। निस्सन्देह तुम्हारा रब जल्द सज़ा देनेवाला है और निश्चय ही वह क्षमाशील और दयावान है।" (क़ुरआन, 6:165)

यह एक खुली हुई घोषणा है कि इस दुनिया में जिस व्यक्ति या समूह को अल्लाह ने सत्ता-शासन, मान-सम्मान और धन-दौलत से मालामाल किया है तो यह उसके लिए इम्तिहान है। इसके ज़रीए से उसे आज़माया जा रहा है कि वह अपनी इस हैसियत का किस तरह इस्तेमाल करता है और कमज़ोरों, निर्धनों एवं शासित लोगों के साथ उसका क्या रवैया है। इसी के अनुसार अल्लाह का उसके साथ मामला होगा। यह बात संक्षिप्त रूप में क़ुरआन की इस आयत में कही गई है :

> "वह, जिसने मौत और ज़िन्दगी को पैदा किया ताकि तुम्हारी आज़माइश करे कि तुममें कौन ज़्यादा अच्छे अमल करता है, और वह ज़बरदस्त है और बख़्शनेवाला (माफ़ करनेवाला) है।"
>
> (क़ुरआन, 67:2)

2. इनसान का वुजूद अल्लाह की इच्छा के अधीन है

इस दुनिया में हर तरफ़ अल्लाह की मरज़ी काम कर रही है। यहाँ जो इनसान भी पैदा होता है उसी की मरज़ी से पैदा होता है। वह उसके लिए कम या ज़्यादा जितनी आयु चाहता है नियत कर देता है। फिर उसी के फ़ैसले के अनुसार इनसान यहाँ से उठा लिया जाता है और उसका आख़िरत (परलोक) का सफ़र शुरू हो जाता है। क़ुरआन में है—

> "ऐ लोगो! यदि तुम्हें मरने के बाद पुनः जी उठने के बारे में सन्देह है तो देखो हमने तुम्हें मिट्टी से पैदा कया, फिर वीर्य से, फिर लोथड़े से, फिर मांस की बोटी से जिसका रूप पूर्ण भी होता है और अपूर्ण भी ताकि अपनी क़ुदरत (सामर्थ्य/शक्ति) तुमपर स्पष्ट कर दें, और हम तुम्हें माताओं के गर्भ में जब तक चाहते हैं एक ख़ास वक़्त तक रखते हैं, फिर हम तुम्हें नवजात शिशु के रूप में निकालते हैं, फिर जवानी की उम्र तक ले जाते हैं ताकि तुम जवानी के ज़ोर और शक्ति तक पहुँचो। तुममें से किसी पर मौत आ जाती है और कोई अत्यन्त बुढ़ापे की उम्र को लौटा दिया जाता है ताकि जानने के बाद कुछ न जानने की हालत को पहुँच जाए।" (क़ुरआन, 22:5)

यही हक़ीक़त क़ुरआन में इस तरह बयान की गई है—

"वही है जिसने तुम्हें मिट्टी से पैदा किया, फिर वीर्य से, फिर रक्त के लोथड़े से; फिर वह तुम्हें एक बच्चे की हालत में निकालता है, फिर मुहलत देता है कि तुम (अपनी जवानी के) ज़ोर को पहुँच जाओ, फिर तुम बूढ़े हो जाओ। तुममें से कोई इससे पहले ही मर जाता है, और यह इसलिए कि तुम एक निर्धारित समय तक पहुँचो और शायद तुम ग़ौर-फ़िक्र (चिन्तन-मनन) करो।" (क़ुरआन, 40:67)

इन आयतों में अल्लाह की क़ुदरत तथा जीवन-मृत्यु के सम्बन्ध में उसकी हिक्मत (तत्वदर्शिता) और फ़ैसले का उल्लेख है कि वह जिस व्यक्ति को जितनी ज़िन्दगी देना चाहता है देता है। कोई बचपन में ही मर जाता है, कोई ठीक युवावस्था में इस दुनिया से कूच कर जाता है और कोई वृद्धावस्था की मंज़िल तक पहुँचकर मौत की आग़ोश में पहुँचता है। इससे यह दलील दी गई है कि ख़ुदा की क़ुदरत से आख़िरत का आना भी असम्भव नहीं है। इससे यह बात भी निकलती है कि जिस व्यक्ति को जितनी ज़िन्दगी मिलती है वह अल्लाह की ओर से है। जब तक अल्लाह चाहे उसे ज़िन्दा रहने का हक़ है। कोई उसे इस हक़ से वंचित करता है तो बहुत बड़ा जुर्म करता है।

3. कायनात से लाभान्वित होने का सबको हक़ है

अल्लाह ने यह विस्तृत और विशाल कायनात इनसान के लिए बहुत ही उपयुक्त बनाई है। इसमें उसके सांसारिक-जीवन का बेहतरीन साज़ो-सामान है। जल और थल उसके अधीन कर दिए हैं। ज़मीन उसके लिए ठहरने की जगह है। वह इस प्रकार बनाई गई है कि इनसान इसपर रह सके और ज़िन्दगी गुज़ार सके। वह यहाँ की हवा और पानी से, सूरज की गरमी और चाँद की ठंडक से, दिन और रात की गर्दिश से, समुद्र की गहराई और नदियों की धारा से फ़ायदा उठा सकता है और उन्हें अपनी भलाई और कल्याण के लिए इस्तेमाल कर सकता है। अल्लाह ने उसे हक़ दिया है कि वह इनसान होने के नाते बिना किसी रोकटोक के उसकी इन नेमतों (संसाधनों) से फ़ायदा उठाए। क़ुरआन में है—

"अल्लाह वह है जिसने आसमानों और ज़मीन को पैदा किया और आसमानों से पानी उतारा और उसके ज़रीए से तुम्हारे लिए फलों की आजीविका निकाली और तुम्हारे लिए नौकाओं को (तुम्हारे) नियन्त्रण में दिया ताकि (वे नौकाएँ) समुद्र में उसके (अल्लाह के) हुक्म से चलें, और तुम्हारे लिए नहरें (तुम्हारे) नियन्त्रण में कीं, और तुम्हारे लिए सूरज और चाँद को नियन्त्रित किया जो हमेशा गर्दिश (गति) में हैं, और तुम्हारे लिए रात और दिन को नियन्त्रित और निर्धारित किया, और तुम्हें वे सब चीज़ें दीं जो तुमने (तुम्हारी प्रकृति ने) तलब कीं। यदि तुम अल्लाह की नेमतों (उपकारों) को गिनना चाहो तो गिन नहीं सकते। बेशक इनसान बड़ा ज़ालिम और बड़ा नाशुक्रा (कृतघ्न) है।" (क़ुरआन, 14 : 32-34)

यही बात क़ुरआन में एक अन्य स्थान पर इस तरह फ़रमाई गई है :

"क्या तुमने देखा नहीं कि अल्लाह ने वे सारी चीज़ें तुम्हारी सेवा में लगा दीं, जो आसमानों और ज़मीन में हैं और तुमपर अपनी ज़ाहिरी (प्रकट) एवं बातिनी (अप्रकट) नेमतें पूरी कर दीं। लोगों में से कुछ वे हैं जो अल्लाह के बारे में बग़ैर इल्म, बग़ैर हिदायत और बग़ैर रौशन किताब (ईश्वरीय ग्रंथ) के झगड़ा करते हैं।" (क़ुरआन, 31 : 20)

इससे यह नतीजा निकलता है कि अल्लाह ने इनसान के लिए इस दुनिया में अनगिनत नेमतें पैदा की हैं और उसी ने उनसे फ़ायदा उठाने का उसे हक़ भी दिया है। अल्लाह की प्रदान की हुई इन नेमतों को कोई उससे छीन नहीं सकता। यदि छीनता है तो घोर अपराध करता है और अपनी सीमा से आगे बढ़ता है।

4. इनसान केवल एक ख़ुदा का बन्दा है

इनसान एक ख़ुदा का बन्दा है। उसे उसी की बन्दगी और उसी का आज्ञापालन करना चाहिए। वह यहाँ एक ख़ुदा के सिवा किसी का ग़ुलाम नहीं है, अतः उसका हक़ है कि वह हर ग़ुलामी से आज़ाद हो, और वास्तव में उसे आज़ाद होना भी चाहिए। किसी व्यक्ति को इसका

हक़ नहीं है कि वह दूसरे किसी व्यक्ति को अपना ग़ुलाम बनाए और अपनी बन्दगी पर उसे मजबूर करे। फ़िरऔन ने बनी-इसराईल के साथ यही किया था। उसने उन्हें ग़ुलाम बना रखा था। हज़रत मूसा *(अलैहि.)* ने इसके ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द की और उससे कहा कि वे ख़ुदा के रसूल हैं और ख़ुदा की इबादत की दावत दे रहे हैं। उनकी दावत का एक पहलू यह भी था कि बनी-इसराईल को जो यातना वह दे रहा था, वह उससे रुक जाए और उन्हें मिस्र से जाने दे। इसके जवाब में फ़िरऔन ने अपने एहसानात (उपकारों) का उल्लेख किया जो उसने हज़रत मूसा *(अलैहि.)* पर उनके प्रारम्भिक दौर में किए थे। इसपर मूसा *(अलैहि.)* ने फ़रमाया। क़ुरआन के शब्दों में—

> "और यह एहसान जो तुम जता रहे हो वह इस कारण था कि तुमने बनी-इसराईल को ग़ुलाम बना रखा था।"
>
> (क़ुरआन, 26:22)

यदि फ़िरऔन ने हज़रत मूसा *(अलैहि.)* पर कोई एहसान किया भी था तो किसी अकेले व्यक्ति के साथ हमदर्दी और मानवता का व्यवहार इस तथ्य का औचित्य नहीं ठहराता कि उसकी पूरी क़ौम को ज़ुल्म के शिकंजे में कस लिया जाए और ग़ुलामी की ज़िन्दगी पर उसे मजबूर किया जाए। उसकी आज़ादी का हक़ अपनी जगह क़ायम है और क़ायम रहेगा। हज़रत मूसा *(अलैहि.)* ने फ़रमाया कि जिस एहसान की तू बात कर रहा है उसकी असल वजह भी यही थी कि तू यह न जान सका था कि जिस ग़ुलाम क़ौम के नरसंहार का तू उपाय कर रहा है मैं उसी क़ौम का व्यक्ति हूँ। और तेरी इस बेख़बरी की वजह से मैं तेरे हाथों क़त्ल होने से सुरक्षित रहा।

हज़रत मूसा *(अलैहि.)* की दावत और बनी-इसराईल की आज़ादी की माँग को फ़िरऔन ने नफ़रत के साथ ठुकरा दिया। उसने कहा, मूसा (और उनके भाई हारून) का सम्बन्ध तो हमारी ग़ुलाम क़ौम से है। उन्हें हम कैसे अल्लाह का रसूल और अपना मार्गदर्शक मान सकते हैं? फ़िरऔन और उसकी क़ौम के लिए नस्ली घमण्ड अल्लाह की हिदायत स्वीकार करने में रुकावट बना और वे नील नदी में ग़र्क़ कर (डुबा) दिए गए।

"उन्होंने कहा कि क्या हम अपने जैसे दो आदमियों (मूसा और हारून) पर ईमान ले आएँ जबकि उनकी क़ौम हमारे अधीन है, फिर उन लोगों ने उन दोनों को झुठलाया और उन क़ौमों में शामिल हो गए जो हलाक कर दी गईं।"

(क़ुरआन, 23 : 47-48)

यह इस बात का एलान है कि अल्लाह का क़ानून वक़्त के किसी फ़िरऔन को बर्दाश्त नहीं करता। शासन और सत्ता की शक्ति इसलिए नहीं है कि एक वर्ग दूसरे को ग़ुलाम बनाए। राज्य में किसी का हक़ दूसरे से कम नहीं है। सबके अधिकार बराबर हैं। राज्य उन अधिकारों का पासबान (रक्षक) है न कि ग़ारतगर (भक्षक)।

5. मज़हबी ग़ुलामी का कोई औचित्य नहीं

सियासी ग़ुलामी के साथ मज़हबी ग़ुलामी का भी इस्लाम विरोधी है। उसने पोपवाद और पुरोहितवाद जैसी स्वार्थी संस्थाओं को ख़त्म किया और बताया कि इनसान ख़ुदा से पैग़म्बरों की हिदायत के अनुरूप स्वयं सम्बन्ध स्थापित कर सकता है, उसे याद कर सकता है, उसके लिए त्याग और बलिदान कर सकता है, मुश्किल घड़ियों में उसे पुकार सकता है और उससे दुआएँ कर सकता है।

"जब तुमसे मेरे बन्दे मेरे सम्बन्ध में सवाल करें तो (बता दो कि) मैं क़रीब हूँ। पुकारनेवाले की पुकार का उत्तर देता हूँ जब वह मुझे पुकारता है। फिर उन्हें भी मेरा हुक्म मानना चाहिए और मुझपर ईमान लाना चाहिए, इससे उम्मीद है कि वे हिदायत पाएँगे।" (क़ुरआन, 2:186)

अल्लाह से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए किसी देवी, देवता या किसी पोप, पंडित और पुरोहित के माध्यम की कोई ज़रूरत नहीं है।

"सुन लो! अल्लाह ही के लिए है बन्दगी जो ख़ालिस (शुद्ध) हो। जिन लोगों ने उसे छोड़कर हिमायती बना रखे हैं उनके बारे में वे कहते हैं कि हम तो इनकी पूजा इसलिए करते हैं ताकि वे हमें ख़ुदा से क़रीब कर दें। बेशक अल्लाह फ़ैसला करेगा उनके बीच उन बातों का जिनमें वे मतभेद करते हैं।

अल्लाह किसी ऐसे व्यक्ति को हिदायत नहीं देता जो झूठा और हक़ (सच्चाई) को न माननेवाला हो।" (क़ुरआन, 39:3)

इसका साफ़ मतलब यह है कि इनसान को सियासी और मज़हबी किसी भी रूप में ग़ुलाम बनाना बिल्कुल नाजाइज़ है। उसका हक़ है कि उसे आज़ादी मिले और वह किसी व्यक्ति अथवा संस्था का ग़ुलाम न रहे।

6. इनसान सम्माननीय है

अल्लाह ने इनसान को अपनी अन्य अनगिनत रचनाओं पर श्रेष्ठता एवं प्रमुखता प्रदान की है—

"हमने आदम की औलाद को इज़्ज़त दी और थल और जल के लिए उन्हें सवारी दी, और उनके खाने के लिए पवित्र चीज़ें प्रदान कीं और अपनी रचनाओं में से ज़्यादातर पर उन्हें श्रेष्ठता प्रदान की।" (क़ुरआन, 17 : 70)

इनसान को अन्य रचनाओं पर जो श्रेष्ठता और प्रमुखता प्राप्त है, उसके कुछ पहलुओं का क़ुरआन ने स्पष्ट उल्लेख किया है और कुछ की ओर इशारे किए हैं।

अल्लाह ने इनसान की बनावट अनुपम तरीक़े से की। वह अपनी शारीरिक बनावट, रूप, आकार, अंग-प्रत्यंग के सन्तुलन और बाहरी रूप की दृष्टि से दुनिया की सुन्दरतम रचना है। क़ुरआन में कहा गया है—

"हमने इनसान को बहुत ख़ूबसूरत तरीक़े से पैदा किया।"

(क़ुरआन, 95:4)

दूसरी जगह है—

"उसने (अल्लाह ने) तुम्हारी सूरत बनाई और तुम्हें बहुत अच्छी शक्ल व सूरत अता की।" (क़ुरआन, 64:3)

एक और जगह पर फ़रमाया—

"वह ख़ुदा जिसने तुझे पैदा किया, तेरे अंग-प्रत्यंग को ठीक किया, उनमें तालमेल एवं सन्तुलन रखा और जिस सूरत में चाहा तुझे जोड़ दिया।" (क़ुरआन, 82:7,8)

इनसान एक ऐसी रचना है जो बोल सकता है, वह बोलकर अपनी अनुभूतियों को प्रकट कर सकता है।

"उसने इनसान को पैदा किया और उसे बोलना सिखाया।"

(क़ुरआन, 55:3-4)

क़लम के ज़रीए से भी वह अपने विचार प्रकट कर सकता है।

"जिसने इनसान को क़लम के ज़रीए तालीम दी।"

(क़ुरआन, 96:4)

यह विशिष्टता और ख़ूबी किसी जानवर को प्राप्त नहीं है कि वह ज़बान अर्थात बोलकर या क़लम के द्वारा अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचा सके। यह चीज़ इनसान से छिन जाए तो वह जानवर की सतह पर आ जाता है।

अल्लाह ने उसे अच्छे शरीर के साथ दिल व दिमाग़ भी अता किए हैं। क़ुरआन में है—

"उसने (अल्लाह ने) तुम्हें कान, आँख एवं दिल दिए, परन्तु तुम बहुत कम उसका शुक्र अदा करते हो।" (क़ुरआन, 32:9)

"अल्लाह ने तुम्हें तुम्हारी माओं के पेटों से निकाला (जबकि) तुम कोई चीज़ नहीं जानते थे। (फिर) उसने तुम्हें कान, आँखें और दिल दिए (जिनके द्वारा तुम बहुत-सी चीज़ों को जानने लगे) ताकि तुम उसके शुक्रगुज़ार (कृतज्ञ) बनो।"

(क़ुरआन, 16:78)

इनसान सोचने, समझने और चिन्तन-मनन की क्षमता रखता है। वह घटनाओं और परिस्थितियों से नतीजे निकालता है और नित नए प्रयोग करता है। आधुनिक से आधुनिक उद्योग-धन्धे इनसान की इसी क्षमता और योग्यता के कारण हैं, आश्चर्यजनक अविष्कार और खोज इसी के कारण वुजूद में आती हैं और इसी क्षमता की मदद से इनसान अपने लिए जीवन के नए-नए संसाधन तलाश करता रहता है। इस प्रकार भौतिक विकास और ख़ुशहाली की ओर वह अग्रसर रहता है।

बुद्धि के द्वारा इनसान भले-बुरे के बीच अन्तर करता है। कर्मों के अच्छे और बुरे होने, सही और ग़लत होने का फ़ैसला बुद्धि से ही करता है और इसी से वह किसी भी मामले में अपनी राय बनाता है और अपनी इच्छा से किसी एक पहलू को अपना सकता है। यह गुण ही इनसान को ज़िम्मेदार व्यक्ति बनाता है।

ये इनसान के बाइज़्ज़त और सम्माननीय होने के कुछ पहलू हैं। इन पहलुओं का उल्लंघन उस इज़्ज़त और सम्मान के विपरीत है जो अल्लाह ने उसे प्रदान किया है। उसके साथ ऐसा रवैया अपनाना स्पष्टतः ज़ुल्म होगा जिसके कारण उसका स्थान इनसान की सतह से गिरकर जानवर की सतह तक पहुँच जाए। इस्लाम हर उस चीज़ का विरोधी है जो मानव-सम्मान से टकराए। भूख, फ़ाक़ा या भोजन की कमी अथवा अपवित्र और गन्दे भोजन के इस्तेमाल पर मजबूर करना, असाधारण एवं अहसनीय परिश्रम का बोझ उसपर डालना, उसके लिए चिकित्सा सुविधा का न होना, या उसे ऐसी यातनाएँ देना जिससे उसका शरीर अपनी प्राकृतिक बनावट खो दे, ये सब उसकी रचनात्मक सुन्दरता को बिगाड़ने के कारक हैं। इस्लाम ऐसी अमानवीय चीज़ों की किसी हालत में इजाज़त नहीं देता। इसी प्रकार इनसान को इल्म (ज्ञान) की रौशनी से वंचित रखना, ऐसा रवैया अपनाना जिससे उसका वैचारिक विकास न हो सके और उसकी मानसिक एवं वैचारिक क्षमताएँ जड़ होकर रह जाएँ और उसकी ज़बान व क़लम पर प्रतिबन्ध लगाना– ये सब चीज़ें भी इस्लाम के निकट सही नहीं हैं। ये चीज़ें तो इनसान की इज़्ज़त और उसके सम्मान के लिए अनिवार्य हैं। इस्लाम इन सबकी भलीभाँति पूर्ति करना चाहता है।

7. वास्तविक प्रशासक अल्लाह है

इनसान समूह में रहना पसन्द करता है। सबसे कटकर अलग-थलग ज़िन्दगी गुज़ारना उसकी प्रकृति के विपरीत है। वह समाज का एक हिस्सा बनकर रहना चाहता है। समाज उसकी एक बुनियादी ज़रूरत है। उसकी ज़िन्दगी की आवश्यकताएँ उसे सामाजिक जीवन गुज़ारने पर विवश करती हैं। वह दूसरों के सहयोग से ही अपनी ज़रूरतें पूरी कर

सकता है। समाज के एक सदस्य की हैसियत से उसके कुछ अधिकार हैं और कुछ कर्त्तव्यों की भी उससे अपेक्षा की जाती है। उसके उन अधिकारों को पूरा करना सभ्य समाज के लिए अनिवार्य है और उसके लिए भी ज़रूरी है कि समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करे। ये अधिकार एवं कर्त्तव्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए हैं। परिवार, समाज और क़बीले (समूह) की भी इसमें भूमिका है और राज्य को भी इसमें अपनी भूमिका निभाना अनिवार्य है।

इन अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का निर्धारण कौन करेगा? क्या व्यक्ति स्वयं इसे निर्धारित करेगा या समाज की परम्पराएँ एवं मान्यताएँ इसे आकार देंगी, या राज्य इसका फ़ैसला करेगा, या इनमें से प्रत्येक अपने-अपने दायरे में रहते हुए सब मिलकर इसका फ़ैसला करेंगे? इस्लाम इसका जवाब यह देता है कि इसके निर्धारण का हक़ केवल अल्लाह को है। वही क़ानून बनानेवाला है, आदेश देने का हक़ केवल अल्लाह को है। वही सबके अधिकार निर्धारित करता है और कर्त्तव्य भी स्पष्ट करता है। व्यक्ति, समाज और राज्य सब उसके अधीन और पाबन्द हैं। क़ानून बनाने का अधिकार उसने न किसी व्यक्ति को दिया है, न किसी मज़हबी पेशवा को, न किसी संस्था को, न समाज को और न ही राज्य को। कभी-कभी मानव-निर्मित क़ानून को मज़हबी पवित्रता एवं सम्मान का दर्जा दे दिया जाता है। इस्लाम ने इसे ग़लत एवं मिथ्या क़रार दिया है।

अरबवासियों ने स्वयं ही कुछ चीज़ों को हलाल और कुछ को हराम घोषित कर उसे ख़ुदा के क़ानून का दर्जा दे रखा था। इसपर क़ुरआन ने घोर आपत्ति की और कहा कि यह केवल अल्लाह का हक़ है कि वह किसी चीज़ के हलाल अथवा हराम होने का फ़ैसला करे। किसी व्यक्ति को स्वयं यह काम करना और उसे अल्लाह की ओर से बताना अल्लाह पर लांछन लगाना और झूठ गढ़ना है। ऐसा जुर्म करनेवाले दुनिया और आख़िरत में कामयाब नहीं होंगे।

> "तुम्हारी ज़बानें जो झूठ बोलती हैं उसके आधार पर यह न कहो कि यह हलाल और यह हराम है। इस प्रकार तुम

अल्लाह पर झूठे लांछन लगाओगे, जो लोग अल्लाह पर झूठे आरोप लगाते हैं वे कदापि कामयाब नहीं होंगे।"

(क़ुरआन, 16:116)

यहूदियों और ईसाइयों ने अपने उलमा (विद्वानों), फ़ुक़हा (विधि-विशेषज्ञों) और मशाइख़ (धार्मिक गुरुओं) को आज़ादी के साथ क़ानून बनाने का हक़ दे रखा था। वे वैध एवं अवैध का स्वयं फ़ैसला करते। वे जिस चीज़ को जाइज़ कहते वह जाइज़ हो जाती और जिस चीज़ को नाजाइज़ होने का फ़रमान सुना देते वह नाजाइज़ हो जाती। क़ुरआन ने इसपर सख़्त अंकुश लगाया और कहा कि किसी आलिम, फ़क़ीह और धर्म-गुरु को इसका हक़ नहीं है कि वह विधिकर्ता (क़ानूनसाज़) बन बैठे। यह काम केवल अल्लाह का है कि वह अपने बन्दों को शरीअत और क़ानून दे।

"उन्होंने अल्लाह को छोड़कर अपने अहबार (धर्मज्ञाताओं) एवं रुहबान (संसार त्यागी संतों) को रब बना लिया और मसीह इब्ने मरियम (ईसा अलै०) को भी— हालांकि उन्हें हुक्म दिया गया कि वे एक अल्लाह की इबादत करें, उसके सिवा कोई माबूद (पूज्य) नहीं। पाक है उसकी ज़ात शिर्क (साझी ठहराए जाने) से जो वे करते हैं।" (क़ुरआन, 9:31)

अहले-किताब (हज़रत मूसा अलै० की क़ौम) को तौरात दी गई और यह ताकीद की गई कि इसकी रौशनी में ज़िन्दगी गुज़ारें और अपने मामलात के फ़ैसले करें। इसके प्रारम्भिक अनुयायियों का इसपर अमल था। उन्होंने इसकी पूरी पाबन्दी की और दुनिया के सामने इसके गवाह बनकर रहे। परन्तु जब बिगाड़ आया तो ख़ुदा की किताब पीछे चली गई और इससे आज़ाद होकर दिए गए फ़तवों और फ़ैसलों ने अल्लाह की किताब की हैसियत ले ली। इसी से उनकी गुमराही और तबाही की शुरुआत हुई।

"हमने तौरात अवतरित की, इसमें मार्गदर्शन और नूर (दिव्य-प्रकाश) था। इसी के अनुसार नबी, जो अल्लाह के फ़रमाँबरदार थे, और उनके दरवेश (धर्म गुरु) और आलिम (विद्वान) यहूदियों के मामलात के फ़ैसले करते थे। इसलिए

कि उनसे अल्लाह की किताब की हिफ़ाज़त का मुतालबा किया गया था और वे उसकी गवाही देनेवाले बनाए गए थे। तो तुम लोगों से मत डरो और मुझसे डरो और मेरी आयतों के ज़रीए से समने-क़लील न ख़रीदो (अर्थात आयतों को थोड़े से मुआवज़े लेकर न बेचो)। जो लोग उन अहकाम (आदेशों) के अनुसार फ़ैसला नहीं करते जो अल्लाह ने उतारे हैं, वही अधर्मी हैं।" (क़ुरआन, 5:44)

इस आयत के अनुसार किसी भी व्यक्ति अथवा संस्था की श्रेष्ठता एवं निरंकुश शासन की अवधारणा समाप्त कर दी गई। अल्लाह ने किसी को यह हक़ ही नहीं दिया कि वह दूसरों के अधिकारों का निर्धारण करे और उनके कर्त्तव्य बताए। इनसान स्वयं भी अपने अधिकार एवं कर्त्तव्य के निर्धारण का हक़ नहीं रखता है। इस मामले में प्रत्येक व्यक्ति को ख़ुदा के दिए हुए क़ानून की ओर पलटना होगा।

8. इज्तिहाद[1] का हक़ प्राप्त है

ऊपर जिस क़ानूनसाज़ी से मना किया गया है उसके अन्तर्गत वह क़ानूनसाज़ी नहीं आती जो अल्लाह की क़ायम की हुई सीमा के अन्तर्गत रहकर की जाती है। इसकी अनुमति ख़ुद उसने दी है। इसी को तफ़क़्क़ुह व इज्तिहाद कहा जाता है। इसका दायरा बहुत विस्तृत है और यह किसी ज़िन्दा और सार्वकालिक शरीअत (क़ानून) के लिए आवश्यक है। इसके बिना वह परिवर्तनशील जीवन का साथ नहीं दे सकती।

मुनाफ़िक़ों (मिथ्याचारियों) के बारे में कहा गया कि वे अमन व ख़ौफ़ (शान्ति और अशान्ति) की ख़बरें बिना पुष्टि के इस प्रकार फैलाते हैं कि मुल्क की अमन-शान्ति ख़तरे में पड़ जाती है। इस मामले में सही रवैया क्या होना चाहिए इसका उल्लेख क़ुरआन में इन शब्दों में किया गया है—

1. 'इज्तिहाद' इस्लामी पारिभषिक शब्द है, इससे तात्पर्य है कि क़ुरआन एवं हदीस की रौशनी में इस्लाम की मूल अवधारणाओं को सामने रखते हुए इस्लामी विधान की समय के अनुसार व्याख्या करना ताकि समकालीन समस्याओं का हल किया जा सके।

"जब उनके पास अमन या ख़ौफ़ की कोई बात पहुँचती है तो उसे फैला देते हैं। यदि इसे वे लौटा देते रसूल की ओर और (समाज के) बड़े सम्मानित लोगों की ओर जो उनमें इसकी खोजबीन कर सकते हैं तो वे वास्तविकता से अवगत होते। और यदि तुमपर अल्लाह का फ़ज़्ल (उदार अनुग्रह) और उसकी रहमत (दयालुता) न होती तो तुम शैतान के पीछे चल पड़ते सिवाय कुछ-एक के।" (क़ुरआन, 4:83)

इस आयत में स्पष्ट हिदायत है कि राज्य के नाज़ुक (संवेदनशील) मामलों में अनुमान और अन्दाज़े से काम लेने तथा अफ़वाहें फैलाने की जगह अल्लाह के रसूल और विद्वानों से सम्पर्क करना चाहिए, जो मामलों की तह तक पहुँच सकते हैं। अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* के पवित्र जीवन-काल में आपकी ओर और राज्य के ज़िम्मेदार पदाधिकारियों से सम्बन्ध स्थापित करने का हुक्म था। आप *(सल्ल.)* के बाद आपकी हिदायतों और विद्वानों से सम्पर्क स्थापित करके दिशानिर्देश लिया जाएगा। विद्वानों की ज़िम्मेदारी है कि सही स्थिति से उम्मत और समाज को बाख़बर करें। क़ुरआन की उपर्युक्त आयत में रसूल के अतिरिक्त जिनसे सम्पर्क स्थापित करने का हुक्म है उनके लिए 'उलुल-अम्र' शब्द आया है। इसके अन्तर्गत उमरा व हुक्काम (पदाधिकारियों) के साथ-साथ उलमा और फ़ुक़हा भी आते हैं। इसलिए कि दीनी मामलों को हालात के मुताबिक़ ये लोग ही हल कर सकते हैं और इनके आदेश-निर्देश भी उसी तरह अमल में लाए जाएँगे जिस तरह हुक्काम के।[1]

यह नाज़ुक (संवेदनशील) हालात में शोध एवं इज्तिहाद का स्पष्ट आदेश है जो हमेशा जारी रहेगा।[2]

9. अख़लाक़ और क़ानून का ताल्लुक़

इनसान के अन्दर अख़लाक़ी हिस (नैतिक-संवेदना) मौजूद है। उच्च नैतिक-मूल्यों से मुहब्बत और निम्न नैतिक-मूल्यों से नफ़रत उसके स्वभाव में सम्मिलित है। इसी कारण इनसान नैतिक रूप से, चाहे हज़ार

1. विस्तृत जानकारी के लिए देखें जस्सास, अहकामुल-क़ुरआन (2:269-207)

2. इज्तिहाद और शोध एक संवेदनशील विषय है। इसकी कुछ शर्तें और सीमाएँ हैं, उनसे यहाँ बहस नहीं है। इन्हें जानने के लिए इस विषय से सम्बन्धित पुस्तकें देखी जानी चाहिए।

ख़राबियों में घिरा हो, नैतिकता को पसन्द और अनैतिकता को नापसन्द करता है। उसकी यह नैतिक संवेदना जाग जाए और शक्तिशाली हो जाए तो वह संस्कार एवं शिष्टता का नमूना बन जाए और किसी को किसी से शिकायत न हो। इस्लाम इनसान की इस भावना को प्रोत्साहन एवं शक्ति प्रदान करता है। उसने इनसान के अधिकारों की मात्र सूची ही उपलब्ध नहीं कराई है, बल्कि अख़लाक़ से उनका रिश्ता जोड़ दिया है। बहुत-से क़ानूनी अधिकारों को वह इनसान के नैतिक गुण की हैसियत से पेश करता है, उनकी पाबन्दी की प्रेरणा देता है, उनका अज्र व सवाब बयान करता है और उनके उल्लंघन पर कठोर सज़ा सुनाता है। उसने इन अधिकारों के सम्बन्ध में व्यक्ति की अन्तरात्मा को झिंझोड़ा और समाज के अन्दर उसके पक्ष में वातावरण तैयार किया है। आत्म-हत्या, सन्तान-हत्या, व्यभिचार, गाली-गलौज, मिथ्यारोपण, किसी का हक़ मारना और ज़ुल्म-ज़्यादती जैसी ख़राबियों को वह दुराचार एवं बड़े गुनाहों की श्रेणी में रखता है और इनपर कठोर दण्ड की सूचना देता है। इनके विपरीत जिन रूपों में भी मानवता का सम्मान हो, उनकी वह प्रशंसा करता और उनके अज्र व सवाब का उल्लेख करता है। इस प्रकार मानवाधिकार की हैसियत उसके निकट मात्र क़ानूनी ही नहीं है, बल्कि इनसान के उच्च नैतिक मूल्यों की भी है।

10. अल्लाह के सामने जवाबदेही का एहसास

इस्लाम ने एक ओर तो मानवाधिकारों को क़ानूनी और नैतिक सुरक्षा प्रदान की और दूसरी ओर उसके सम्मान की भावना उभारी। उसके निकट यह अल्लाह का दिया हुआ क़ानून है और उसके बताए हुए निर्देश हैं। उसकी स्थापित की गई सीमाओं से उनका सम्बन्ध है। इनकी पाबन्दी हर हाल में अनिवार्य है। इससे इनसान कल क़ियामत के दिन अल्लाह के पुरस्कार एवं प्रशंसा का पात्र बनेगा और इनके उल्लंघन पर अल्लाह के सामने जवाबदेह होना पड़ेगा और वहाँ के ख़ौफ़नाक अज़ाब (दण्ड) से वह दोचार होगा। अल्लाह के नेक बन्दों की एक विशेषता यह भी है कि वे अल्लाह की स्थापित की गई सीमाओं की निगरानी करते हैं कि उनका अतिक्रमण न होने पाए। इसे कुछ मिसालों से स्पष्ट किया जा सकता है।

विरासत में सम्बन्धियों के अधिकारों को बयान करने के बाद कहा गया है—

"ये अल्लाह की क़ायम की हुई हुदूद (सीमाएँ) हैं। जो अल्लाह और उसके रसूल का आज्ञापालन करे तो अल्लाह उसे ऐसी जन्नतों में दाख़िल करेगा जिनके नीचे नहरें बह रही होंगी। उनमें वह हमेशा रहेगा, और यह बड़ी कामयाबी है। और जो अल्लाह और उसके रसूल की नाफ़रमानी (अवज्ञा) करे और उसकी सीमाओं से आगे बढ़े तो उसे वह (अल्लाह) जहन्नम की आग में दाख़िल करेगा, जिसमें वह हमेशा रहेगा और उसके लिए अपमानजनक यातना है।"

(क़ुरआन, 4:13-14)

क़ुरआन ने इन अधिकारों की पाबन्दी को क़ियामत के अक़ीदे (आस्था) से जोड़ दिया है। यह अक़ीदा इनसान को अधिकारों के हनन से रोकता है, उनके सम्मान के लिए मजबूर करता है। बेगुनाह का क़त्ल केवल क़ानूनी जुर्म ही नहीं एक बड़ा गुनाह (पाप) भी है। क़ुरआन में एक अन्य स्थान पर कहा गया कि ईमानवाले शिर्क, क़त्ल और बलात्कार जैसे जुर्म में लिप्त नहीं होते। क़ुरआन में है—

"जो ऐसे पाप करेगा वह गुनाह (की सज़ा) पाएगा। क़ियामत के दिन उसे दुगुना अज़ाब दिया जाएगा। उसी में अपमानित होकर हमेशा पड़ा रहेगा। हाँ! जिसने तौबा की और ईमान लाया और अच्छे कर्म किए तो ऐसे लोगों की ग़लतियों को अल्लाह नेकियों से बदल देगा, और अल्लाह बड़ा बख़्शनेवाला (माफ़ करनेवाला) और मेहरबान है।"

(क़ुरआन, 25:68-70)

इस्लाम से पूर्व अज्ञानकाल में लड़कियों को ज़िन्दा दफ़न कर दिया जाता था। इस घिनौने जुर्म पर क़ुरआन में कठोर निन्दा की गई—

"जब ज़िन्दा गाड़ी गई लड़की से पूछा जाएगा कि किस गुनाह में वह मारी गई।" (क़ुरआन, 81:8-9)

यतीम (अनाथ) के धन पर नाजाइज़ क़ब्ज़े से मना करते हुए क़ुरआन में कहा गया है—

"जो लोग यतीमों के माल नाहक़ खाते हैं वे अपने पेटों में आग भर रहे हैं और वे जल्द ही जहन्नम में दाख़िल होंगे।"

(क़ुरआन, 4:10)

एक जगह अमानतों की अदायगी का हुक्म है। इसमें माल से सम्बन्धित अमानतें भी हैं और पद की अमानतें भी। क़ुरआन में है—

"बेशक अल्लाह तुम्हें हुक्म देता है कि अमानतों को उन तक पहुँचा दो जिनकी अमानतें हैं और जब लोगों के बीच फ़ैसला करो तो इनसाफ़ के साथ फ़ैसला करो। यक़ीनन अल्लाह तुम्हें अच्छी नसीहत करता है। बेशक अल्लाह सुननेवाला और देखनेवाला है।" (क़ुरआन, 4:58)

क़ियामत के हिसाब-किताब और आख़िरत की जवाबदेही का एहसास उभर आए तो मानवाधिकार का उल्लंघन कभी न हो। इस एहसास की कमी ही अधिकारों की पूर्ति के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट है।

व्यक्ति के व्यक्तिगत एवं निजी अधिकार

ज़िन्दा रहने का अधिकार

व्यक्ति के अधिकारों में सबसे बड़ा और बुनियादी अधिकार ज़िन्दा रहने का अधिकार (हक़) है। यह अधिकार किसी से छीन लिया जाए तो अन्य अधिकारों का सवाल ही नहीं पैदा होता। दुनिया के सभी लोकतान्त्रिक संविधानों ने इसे एक स्वाभाविक और बुनियादी अधिकार घोषित किया है। इसके साथ यह बात भी स्वीकार की गई है कि यह अधिकार ऐसा नहीं है कि हर व्यक्ति को हर हाल में और बिना-शर्त प्राप्त हो। न्याय और इनसाफ़ तथा जाइज़ क़ानून के अनुसार किसी को इस अधिकार से वंचित भी किया जा सकता है।

इस्लाम ने इनसान को ज़िन्दगी का हक़ दिया, इसे छीनने से सख़्ती से रोका और इसे पूरी सुरक्षा भी प्रदान की। उसने एलान किया कि जब तक न्याय की माँग न हो उसे इस अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता। उसके निकट हर इनसान, जो यहाँ पैदा होता है, ज़िन्दा रहने का हक़ लेकर पैदा होता है। ज़िन्दगी उसे अल्लाह की ओर से मिली है, वही उसका मालिक है, उसे कोई छीनने का अधिकारी नहीं, यहाँ तक कि इनसान स्वयं भी अपनी ज़िन्दगी ख़त्म नहीं कर सकता। इसी कारण आत्महत्या इस्लाम में हराम (वर्जित) है।

इस्लाम ने ईमानवालों की एक प्रमुख विशेषता यह बयान की है कि वे नाहक़ किसी की जान नहीं लेते।

> ''वे किसी प्राणी को, जिसके क़त्ल को अल्लाह ने हराम ठहराया है, क़त्ल नहीं करते। सिवाए इसके कि हक़ (न्याय) का तक़ाज़ा (माँग) हो।'' (क़ुरआन, 25:68)

हदीस की एक प्रामाणिक पुस्तक 'बुख़ारी' की हदीस है। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र *(रज़ि.)* रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "बड़े गुनाह हैं— अल्लाह के साथ शिर्क करना (साझीदार ठहराना), माँ-बाप की नाफ़रमानी (अवज्ञा) करना, किसी प्राणी को क़त्ल करना और झूठी क़सम खाना।"

इसका मतलब है कि क़त्ल जैसे बड़े अपराध से ईमानवालों का दामन पाक होता है, और पाक होना भी चाहिए।

इस्लाम ने स्पष्टता के साथ बताया है कि इनसान कब ज़िन्दगी के अधिकार से वंचित हो जाता है। वे कौन-से अपराध हैं जिनके करने के बाद वह अपने जीवित रहने का अधिकार खो देता है और समाज के लिए वह असहनीय हो जाता है।

> "जो कोई किसी नफ़्स (इनसान) को क़त्ल करे, बग़ैर इसके कि उसने किसी को क़त्ल किया हो या ज़मीन में फ़साद (बिगाड़) फैलाया हो, तो मानो उसने सब इनसानों को क़त्ल कर दिया। जिसने किसी नफ़्स (इनसान) को ज़िन्दा रखा मानो उसने सब इनसानों को ज़िन्दा किया।" (क़ुरआन, 5:32)

यह हुक्म बनी-इसराईल को दिया गया था और यही मुहम्मद *(सल्ल.)* की शरीअत में भी बाक़ी रखा गया है कि यदि आदमी किसी का नाहक़ ख़ून बहाए या राज्य में फ़साद फैलाए और मार-काट का बाज़ार गर्म करे तो वह अपने जीवित रहने का हक़ खो देता है, अर्थात उसकी जान लेना फिर अवैध नहीं रहता। उसका वुजूद धरती पर असहनीय समझा जाने लगता है। उसे रास्ते से हटाकर शान्ति-व्यवस्था स्थापित करना राज्य का कर्त्तव्य है। इसे किसी पहलू से ग़लत नहीं ठहराया जा सकता।

इसका कारण यह बताया गया है कि एक व्यक्ति का भी नाहक़ ख़ून बहाना एक संगीन जुर्म है, यह सम्पूर्ण मानव-जाति को ख़ूनख़राबे की राह पर लगाना है। इसके विपरीत किसी मज़लूम और बेगुनाह की जान बचाना, सम्पूर्ण जगत् के लिए प्राणदायी है। कारण यह है कि इससे इनसानी जान के महत्व एवं मूल्य की शिक्षा मिलती है। आदम *(अलैहि.)* की औलाद में जिसने पहली बार अपने भाई का नाहक़ ख़ून बहाया, उसने दूसरों को यह राह दिखाई। इसी लिए जब कभी ज़मीन पर नाहक़ ख़ून बहेगा, उसे इसमें सम्मिलित समझा जाएगा और उसके

नाम-ए-आमाल (कर्म-पत्र) में उसका गुनाह लिखा जाएगा। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद *(रज़ि.)* की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "कोई व्यक्ति ज़ुल्म के साथ क़त्ल किया जाता है तो आदम (अलैहि॰) के उस पुत्र पर भी इस ख़ून का एक हिस्सा आएगा जिसने सर्वप्रथम क़त्ल का जुर्म किया था, क्योंकि उसने नाजाइज़ क़त्ल का तरीक़ा दुनिया को दिखलाया।"
>
> (हदीस : बुख़ारी)

नाजाइज़ क़त्ल के सन्दर्भ में इस्लाम ने निम्नलिखित निर्देश दिए हैं—

1. क़ातिल से क़िसास लिया जाए। यानी किसी ने नाजाइज़ क़त्ल किया है तो उसे क़त्ल किया जाए। इसका फ़ायदा यह होगा कि किसी दूसरे को इस जुर्म को करने का साहस न होगा। इसी लिए क़ुरआन में कहा गया—

   "तुम्हारे लिए, ऐ अक्लवालो, क़िसास (हत्यादण्ड) में ज़िन्दगी है। उम्मीद है इस तरह तुम इससे (क़त्ल से) बचोगे।"

   (क़ुरआन, 2:179)

   क़िसास (हत्यादण्ड) में मक़तूल (मारे गए व्यक्ति) के साथ क़ातिल की भी जान जाती है। प्रत्यक्षतः इसमें एक और व्यक्ति को भी जान से हाथ धोना पड़ता है, परन्तु इसमें सम्पूर्ण मानव-जाति के लिए जीवन है। क़िसास के क़ानून पर सही तरीक़े से अमल हो तो क़त्ल करने से पहले आदमी हज़ार बार सोचेगा कि इसके बाद उसे भी ज़िन्दगी से हाथ धोना पड़ेगा। इससे नाजाइज़ क़त्ल का ग्राफ़ गिरेगा। इसमें केवल व्यक्ति का ही लाभ नहीं है बल्कि सम्पूर्ण मानव-जाति का लाभ है।

2. यदि मक़तूल के वारिस (उत्तराधिकारी) चाहें तो क़िसास की जगह दियत (क़त्ल का आर्थिक बदला) ले सकते हैं। उन्हें पूरी दियत लेने अथवा उसमें कमी करने का भी अधिकार है। वे क़ातिल को माफ़

भी कर सकते हैं। माफ़ी पसन्दीदा अमल है, इसके लिए प्रेरित किया गया है। (देखें क़ुरआन, 2:178)

3. उपरोक्त सभी मामलों का अधिकार मक़तूल के परिवार के सदस्यों को प्राप्त होगा। इस्लाम ने इसे राज्य के अधिकार-क्षेत्र से बाहर रखा है। राज्य इस मामले में मक़तूल के वारिसों को उनका हक़ दिलाने में सहयोग करेगा। यदि वे क़ातिल के साथ शरीअत से अलग हटकर अथवा कोई अमानवीय व्यवहार करना चाहें, या उसके साथ उसके परिवार के अन्य सदस्यों से बदला लेने की कोशिश करें और वे स्वयं ज़ुल्म-ज़्यादती पर आमादा हों तो इसकी उन्हें इजाज़त नहीं होगी। क़ानूनन उन्हें इससे रोका जाएगा।

"जिस नफ़्स के क़त्ल को अल्लाह ने हराम ठहराया है उसे क़त्ल न करो, और जो कोई ज़ुल्म से क़त्ल किया जाए तो हमने उसके वली (उत्तराधिकारी) को अधिकार दिया है, परन्तु वह क़त्ल में हद से आगे न बढ़े। बेशक उसकी मदद होगी।" (क़ुरआन, 17:33)

समानता का अधिकार

समानता को इनसान का बुनियादी हक़ ही नहीं बल्कि सभी प्रकार के अधिकारों की बुनियाद कहा जाता है। मानवाधिकार के अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा-पत्र (Universal Declaration of Human Rights) में जिन अधिकारों का उल्लेख किया गया है, उनके सम्बन्ध में कहा गया है कि ये अधिकार सबको समान रूप से प्राप्त होंगे। इसमें वंश, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक अथवा अन्य विचारधारा, सामाजिक एवं आर्थिक हैसियत और जन्मभूमि के आधार पर अन्तर एवं भेदभाव नहीं किया जाएगा। यही बात अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक एवं राजनीतिक सन्धि (International Covenant on Civil and Political Rights) में कही गई है।

राज्य की यह ज़िम्मेदारी ठहराई गई है कि वह इन अधिकारों का हनन न होने दे और उसकी अपेक्षाओं को ज़िन्दगी के किसी भी मामले में प्रभावित होने से बचाए।[1]

1. देखें : Human Rights International Challenges, Volume-I, P.P. 79-84

दुनिया ने समानता की अवधारणा को आज जितनी अहमियत दी है, इस्लाम ने इसे इससे ज़्यादा अहमियत दी है। मानव-एकता एवं समानता की अवधारणा उसकी बुनियादी शिक्षाओं में सम्मिलित है। उसने इसे उस समय उजागर किया जबकि दुनिया इससे बेख़बर और अनभिज्ञ थी।

इनसानों के अन्दर वर्ण, वंश, भाषा, क्षेत्रीयता, लिंग, पद, हैसियत, कारोबार व पेशे आदि का अन्तर प्राकृतिक रूप से पाया जाता है, परन्तु इस अन्तर को इनसान ने अपनी नादानी से केवल यही नहीं कि वास्तविक अन्तर समझ लिया, बल्कि इसे श्रेष्ठता एवं निम्नता का मापदण्ड भी घोषित कर दिया, कभी उसने गोरे को काले से श्रेष्ठ बनाया, कभी किसी ख़ास वंश की अन्य वंशों पर श्रेष्ठता की परिकल्पना उसपर छाई रही— कभी किसी भाषा के बोलनेवालों को वह अन्य भाषा-भाषियों से श्रेष्ठ समझ बैठा तो कभी जाति एवं लिंग उसके लिए श्रेष्ठता का आधार बन गया और औरत पर मर्द की प्रधानता असहनीय बनी रही। आज भी समानता के हज़ार दावों के बावजूद ये अन्तर शेष हैं। इस्लाम ने इनसानों के बीच अन्तर एवं भेदभाव की इस सोच पर कड़ा प्रहार किया और इस हक़ीक़त को उजागर किया कि इनसानों के बीच अन्तर एवं भिन्नता वास्तव में आपसी परिचय का ज़रीआ है, वास्तविक अन्तर नहीं। यह अन्तर इसलिए है ताकि पता चले कि किस व्यक्ति का किस भूभाग एवं देश से सम्बन्ध है? वह कौन-सी भाषा बोलता है और उसका लिंग क्या है? यह परिचय वास्तव में एक-दूसरे को जानने-पहचानने का ज़रीआ है। यदि सबके रंग-रूप, शक्ल-सूरत, भाषा-बोली एक होती तो उन्हें पहचाना न जाता। इनसानों के बीच यह भिन्नता और विविधता क़ुदरत (प्रकृति) की निशानी है कि उसने इस विविधता एवं रंगारंगी के अन्दर मानवजाति की एकता शेष रखी है। यह विविधता में एकता की दलील है। मतभेद और बिखराव की दलील नहीं है। इस संदर्भ का चित्रण क़ुरआन में बहुत ही सुन्दर ढंग से हुआ है। कहा गया—

"ऐ लोगो! हमने तुम्हें एक मर्द और औरत से पैदा किया और

तुम्हें क़ौमों एवं क़बीलों का रूप दिया ताकि तुम एक-दूसरे को पहचानो। बेशक तुममें सबसे बुज़ुर्ग (श्रेष्ठ) अल्लाह के नज़दीक वह है जो तुममें सबसे ज़्यादा उससे डरता है। यक़ीनन अल्लाह जाननेवाला और ख़बर रखनेवाला है।"

(क़ुरआन, 49:13)

अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल॰) ने मक्का फ़तह के बाद जो ख़ुतबा (भाषण) दिया, उसमें क़ौमी एवं नस्ली श्रेष्ठता की भावना को हमेशा के लिए ख़त्म कर दिया और बताया कि आदम की सब औलाद की हैसियत समान है। हाँ! तक़वा (अल्लाह का डर और ईशपरायणता), अल्लाह की भक्ति और आचरण की श्रेष्ठता से इनसान महानता एवं श्रेष्ठता के उच्च स्थान पर विराजमान हो सकता है और वह दूसरों के लिए आदरणीय बन सकता है। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ऐ लोगो! सुन लो, बेशक तुम्हारा रब (ईश) एक है और तुम्हारा बाप (भी) एक है। सुन लो, किसी अरबवासी को किसी अजमी (ग़ैर-अरब) पर, किसी अजमी को किसी अरब पर, किसी गोरे को किसी काले पर और किसी काले को किसी गोरे पर कोई श्रेष्ठता एवं प्रधानता नहीं है सिवाय तक़्वा के (जिसके अन्दर जितना तक़्वा होगा उतना ही वह श्रेष्ठ समझा जाएगा)।" (हदीस : मुस्नद अहमद)

यह मानव समानता एवं एकता की स्पष्ट घोषणा (Declaration) थी कि किसी भी व्यक्ति को चाहे उसका सम्बन्ध किसी भी नस्ल एवं जाति से हो, किसी अन्य वर्ण, वंश एवं जाति के व्यक्ति पर कोई श्रेष्ठता नहीं है। श्रेष्ठता का पैमाना केवल तक़्वा और ईश-भक्ति है, जो जितना ईशपरायण है वह उतना ही इज़्ज़त एवं सम्मान का पात्र है।

इनसानों के बीच अन्तर एवं भेदभाव और उनपर ज़ुल्म-ज़्यादती अल्लाह के क्रोध को भड़काती है, और जिस क़ौम को यह मर्ज़ लग जाए वह अन्ततः तबाह व बर्बाद हो जाती है। फ़िरऔन और उसकी क़ौम नस्ली संकीर्णता एवं श्रेष्ठता की भावना में लिप्त थी और वह बनी-इसराईल (इसराईली-क़ौम) को अपने समकक्ष हैसियत देने के लिए

तैयार न थी, उसने उन्हें ग़ुलाम बनाए रखा था और उन्हें मात्र ख़िदमतगार की हैसियत से देखती थी। नरसंहार के द्वारा उनकी जनशक्ति को घटाने और उन्हें कम करने की लगातार कोशिशें कर रही थी और उनके उभरने के सभी अवसर उसने अवरुद्ध कर रखे थे। किसी क़ौम के एक वर्ग को इस प्रकार दबाना और कुचलना संगीन जुर्म था। क़ुरआन ने इस ज़ुल्म को जगह-जगह स्पष्ट किया और बताया कि अल्लाह ने फ़िरऔन के इस रवैये के मुक़ाबले में बनी-इसराईल जैसी कमज़ोर क़ौम को ऊपर उठाया और फ़िरऔन और उसकी क़ौम अपने बुरे अंजाम को पहुँचकर रही। क़ुरआन में है—

> "बेशक फ़िरऔन ने (मिस्र की) धरती में सरकशी की राह अपनाई और वहाँ के बाशिन्दों को फ़िरक़ों (गरोहों) में बाँट दिया। उनमें से एक गरोह (बनी इसराईल) को कमज़ोर बनाए रखा। उनके बेटों को ज़िब्ह कर देता (मार डालता) और उनकी औरतों को ज़िन्दा रखता। बेशक वह फ़साद (बिगाड़ पैदा) करनेवालों में से था। और हम उन लोगों पर एहसान करना चाहते थे जो ज़मीन में कमज़ोर बनाकर रखे गए थे, उन्हें इमाम बनाना चाहते थे (अर्थात नेतृत्व देना चाहते थे) और उन्हें ज़मीन में सत्ता देना चाहते थे और फ़िरऔन, हामान और उनके लश्करों को उनके ज़रीए से वही कुछ दिखाना चाहते थे जिससे वे डर रहे थे।" (क़ुरआन, 28:4-6)

यह इस बात का स्पष्ट एलान है कि हुकूमत और सत्ता किसी भी वर्ग अथवा गरोह को ग़ुलाम बनाने के लिए नहीं है। राज्य का हर व्यक्ति और हर समूह अपने अधिकार रखता है। राज्य उसे किसी भी हीले-बहाने अथवा श्रेष्ठता-तुच्छता के मिथक के सहारे ख़त्म नहीं कर सकता। अल्लाह का क़ानून इस ज़ुल्म-ज़्यादती और फ़िरऔनियत को सहन नहीं करता।

न्याय और इनसाफ़ की स्थापना

इनसानों के बीच समानता का लाज़िमी तक़ाज़ा यह है कि सबके

साथ न्याय और इनसाफ़ हो। कोई भी व्यक्ति ज़ुल्म-ज़्यादती का निशाना न बनने पाए। इस्लामी शिक्षाएँ जिन बुनियादों पर क़ायम हैं उनमें से एक बुनियाद न्याय एवं इनसाफ़ भी है। इस्लाम ने न्याय और इनसाफ़ की सोच को उभारा और उसे एक जागृत एवं सक्रिय सोच बनाया। उसने कहा कि यह दुनिया न्याय और इनसाफ़ पर क़ायम है। इनसान की ज़िन्दगी भी न्याय ही की बुनियाद पर ठीक हो सकती है, अतः न्याय पर मज़बूती के साथ जमे रहना चाहिए। इनसान ज़ुल्म की राह पर चल पड़े तो समाज निश्चित रूप से बेचैनी, असन्तोष और घबराहट से दोचार होगा और समाज में शान्ति नहीं रह सकेगी। समाज की दौड़-भाग और गतिशीलता न्याय के दायरे में हो तो यहाँ वही अमन और शान्ति होगी जो पूरी कायनात (ब्रह्माण्ड) में नज़र आती है। इस सन्दर्भ में क़ुरआन के सारगर्भित एवं वैज्ञानिक शब्द देखें—

> "सूरज और चाँद के लिए एक हिसाब है (कि वे उसी के अनुसार गतिशील हैं) और पौधे एवं पेड़ सज्दा कर रहे हैं, उसने आसमान को बुलन्द किया और मीज़ान (तुला) रख दी कि तुम मीज़ान में ज़्यादती न करो। इनसाफ़ के साथ वज़न को क़ायम रखो और तौलने में कमी न करो।"
>
> (क़ुरआन, 55:5-9)

अल्लाह का पूरा दीन (अर्थात इस्लाम) सच्चाई और इनसाफ़ पर क़ायम है।

> "तुम्हारे रब की बात पूरी है सच्चाई की दृष्टि से और न्याय की दृष्टि से।" (क़ुरआन, 6:115)

मतलब यह है कि उसने जो शिक्षाएँ दी हैं और ग़ैब (परोक्ष) की जो हक़ीक़तें बयान की हैं वे सब की सब ठीक और सही हैं। उन्हें ग़लत बताने की कोई उचित बुनियाद नहीं है। और उसने जो निर्देश दिए हैं वे हर प्रकार के ज़ुल्म-सितम से पाक और पूर्णतः न्याय और इनसाफ़ पर आधारित हैं।

पैग़म्बरों के भेजे जाने का एक अहम मक़सद न्याय और इनसाफ़ की स्थापना है। इस्लाम इसके लिए शक्ति के इस्तेमाल को भी जाइज़ क़रार देता है।

"हमने अपने रसूल दलीलों के साथ भेजे और उनके साथ किताब और मीज़ान उतारी ताकि लोग इनसाफ़ पर क़ायम रहें। और हमने लोहा भी उतारा। उसमें सख़्त लड़ाई (का सामान) है और लोगों के लिए बहुत-से फ़ायदे भी हैं, और ताकि अल्लाह जान ले कि बग़ैर देखे कौन उसकी और उसके रसूलों की मदद करता है। बेशक अल्लाह शक्तिशाली और ज़बरदस्त है।" (क़ुरआन, 57:25)

इस्लाम जिस समाज का निर्माण चाहता है उसकी कल्पना न्याय और इनसाफ़ के बिना नहीं की जा सकती। उसका निर्देश है कि ज़ुल्म-ज़्यादती के चलन से पूरी तरह बचा जाए और किसी भी मामले में और किसी भी परिस्थिति में न्याय के मार्ग से क़दम हटने न पाए। उसने न्याय और इनसाफ़ की हिदायत तथा ज़्यादती और बग़ावत से बचने का उल्लेख एक साथ किया है। इसलिए कि ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। क़ुरआन में कहा गया है—

"अल्लाह हुक्म देता है न्याय का, और एहसान का, और रिश्तेदारों को (उनका हक़) अदा करने का, और मना करता है बेहयाई से, बुरी बातों से और ज़्यादती एवं सरकशी से। वह तुम्हें नसीहत करता है शायद कि तुम नसीहत प्राप्त करो।"

(क़ुरआन, 16:90)

आदेश है कि दुश्मनों के साथ भी न्याय और इनसाफ़ का रवैया अपनाओ। यही अल्लाह की भक्ति करनेवाले इनसानों का तरीक़ा है।

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अल्लाह के लिए खड़े होनेवाले हो जाओ, न्याय एवं इनसाफ़ के गवाह बनकर। किसी क़ौम की दुश्मनी तुम्हें हरगिज़ इस बात पर आमादा न करे कि तुम न्याय से फिर जाओ। न्याय करो, यह तक़वा (ईशपरायणता) से क़रीबतर है। अल्लाह से डरते रहो। बेशक तुम जो कुछ करते हो अल्लाह उससे बाख़बर है।"

(क़ुरआन, 5:8)

इस्लाम के निकट सत्ता एवं शासन न्याय की स्थापना के माध्यम हैं। जिस व्यक्ति के हाथ में सत्ता की बागडोर है उसकी ज़िम्मेदारी दूसरों से ज़्यादा है। वह इनसाफ़ को हर हाल में क़ायम करेगा और नाइनसाफ़ी से उसका दामन पाक होगा। इस्लामी स्टेट अपने संसाधन को न्याय की स्थापना के लिए इस्तेमाल करेगी। क़ुरआन में हज़रत दाऊद *(अलैहि.)* को सम्बोधित करते हुए फ़रमाया गया—

"ऐ दाऊद! हमने तुझे ज़मीन में नायब (प्रतिनिधि) बनाया है। अतः तुम लोगों के बीच हक़ एवं इनसाफ़ के अनुसार फ़ैसला करो और अपनी इच्छाओं के पीछे न चलो कि वे तुम्हें अल्लाह के रास्ते से भटका देंगी। बेशक जो लोग अल्लाह के रास्ते से भटक जाते हैं उनके लिए सख़्त अज़ाब है, इसलिए कि उन्होंने हिसाब के दिन को भुला दिया था।" (क़ुरनआन, 38:26)

अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* को हुक्म हुआ—

"यदि तुम इनके बीच फ़ैसला करो तो न्याय और इनसाफ़ के साथ फ़ैसला करो। बेशक अल्लाह इनसाफ़ करनेवालों को पसन्द करता है।" (क़ुरआन, 5:42)

अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

क़ियामत के दिन न्यायप्रिय इमाम (न्यायप्रिय शासक) उन लोगों में होगा जिन्हें अर्शे-इलाही (ईश-सिंहासन) के साए में जगह मिलेगी जबकि उस दिन सिवाय इस एक साया के और कोई साया न होगा। (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"बेशक, इनसाफ़ करनेवाले अल्लाह के नज़दीक नूर के मिम्बरों (दिव्यप्रकाश से प्रकाशित पायदानों) पर विराजमान होंगे जो रहमान अज़्ज व जुल्ल (इज़्ज़त व जलालवाला अर्थात अल्लाह) के सीधे हाथ की ओर होंगे और उसके दोनों ही हाथ सीधे हैं। इनसाफ़ करनेवाले वे हैं जो अपने फ़ैसलों में, परिवारवालों के मामले में और जिनके वे निगराँ बनाए जाएँ

उन सबके सिलसिले में इनसाफ़ करते हैं।"

(हदीस : मुस्लिम)

न्याय और इनसाफ़ के सन्दर्भ में इस्लाम की ये स्पष्ट हिदायतें हैं। यदि इनपर ठीक-ठीक अमल हो तो अधिकार-हनन और ज़ुल्म-ज़्यादती की जड़ उखड़ सकती है और हर प्रकार के शोषण से मुक्त समाज अस्तित्व में आ सकता है।

क़ानून की प्रधानता

इस्लाम ने न्याय और इनसाफ़ पर आधारित क़ानून ही नहीं दिया बल्कि उसकी प्रधानता भी स्थापित की। उसके निकट क़ानून की नज़र में सब बराबर हैं। उसमें छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब का भेदभाव नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि उसके सामने सिर झुका दे वरना यह निफ़ाक़ (मिथ्याचार) और ईमान की कमज़ोरी की दलील होगी।

> "यह किसी मोमिन मर्द और किसी मोमिन औरत का तरीक़ा नहीं है कि जब अल्लाह और उसका रसूल कोई फ़ैसला कर दे तो फिर उन्हें अपने मामले में (फ़ैसला लेने का) अधिकार बाक़ी रहे, जो अल्लाह और उसके रसूल की नाफ़रमानी करे वह खुली गुमराही में पड़ गया।" (क़ुरआन, 33:36)

मुनाफ़िक़ों (मिथ्याचारियों) के रवैये की आलोचना करते हुए क़ुरआन ने कहा कि अल्लाह और उसके रसूल के फ़ैसले को स्वीकार करने में उन्हें संकोच एवं शंका होती है और वे यह समझते हैं कि इसमें उनका घाटा है, परन्तु सही और सच्चे ईमानवालों का रवैया दूसरा होता है। वे सरापा इस फ़ैसले के आगे झुक जाते हैं और इसे दिल से स्वीकार करते हैं।

> "ईमानवालों की बात यह होती है कि जब उन्हें अल्लाह और उसके रसूल की ओर बुलाया जाए ताकि वह उनके बीच फ़ैसला करे तो बस वे यह कहते हैं कि हमने सुना और आज्ञापालन किया। ये ही फ़लाह (सफलता) पानेवाले हैं। जो व्यक्ति अल्लाह और उसके रसूल का आज्ञापालन करे, अल्लाह से डरे और उसका तक़्वा अपनाए तो ऐसे ही लोग कामयाब होंगे।" (क़ुरआन, 24:51-52)

क़ानून की प्रधानता की इससे बड़ी मिसाल और क्या हो सकती है कि एक बार बनू-मख़ज़ूम क़बीले की एक औरत ने चोरी की तो उस क़बीले के लोगों ने हज़रत उसामा *(रज़ि.)* से दरख़ास्त की कि वे नबी *(सल्ल.)* से सिफ़ारिश करें कि उसे चोरी की सज़ा न दी जाए। इसपर नबी *(सल्ल.)* ने हज़रत उसामा *(रज़ि.)* पर, जो आपको औलाद की तरह प्रिय थे, नाराज़गी का इज़हार किया और फ़रमाया—

> "क्या तुम अल्लाह की हदों (क़ानूनों) में से एक हद के सिलसिले में सिफ़ारिश कर रहे हो।" (हदीस : बुख़ारी)

इसके बाद नबी *(सल्ल.)* ने ख़ुतबा (भाषण) दिया। उसमें फ़रमाया—

> "तुमसे पहले के लोगों को जिस चीज़ ने तबाह किया वह यही थी कि जब उनमें से कोई शरीफ़ और सम्मानित व्यक्ति चोरी (या और कोई जुर्म) करता तो उसे छोड़ देते परन्तु यदि कोई कमज़ोर चोरी करता तो उसपर हद लगाते (अर्थात् सज़ा देते)।" (हदीस : बुख़ारी)

इस प्रस्तावना के बाद नबी (सल्ल॰) ने क़ानून की प्रधानता के सिलसिले में वे शब्द कहे जो इस्लामी क़ानून की पुस्तकों में स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं और जो एक पैग़म्बर की शान (महानता) के अनुकूल हैं। आप (सल्ल॰) ने जो फ़रमाया उसका मतलब यह है कि ख़ुदा की क़सम, अगर मेरी (मुहम्मद सल्ल॰) की बेटी फ़ातिमा भी चोरी करती तो मैं उसे भी सज़ा देता। (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर *(रज़ि.)* फ़रमाते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* को फ़रमाते सुना है—

> "जिस किसी की सिफ़ारिश अल्लाह के हुदूद (क़ानून) में से किसी हद के लागू करने में अवरुद्ध हो जाए उसने अल्लाह की मुख़ालिफ़त (विरोध) की।" (हदीस : अबू-दाऊद)

राज्य अधिकारों का पोषक एवं नियन्त्रक है

समाज में किसी व्यक्ति का किसी भी रूप में समर्थ होना इस्लाम

के निकट उसकी ज़िम्मेदारियों में इज़ाफ़ा करता है। जिस व्यक्ति को जितनी सत्ता अथवा प्रमुखता प्राप्त है उतना ही वह अपने मातहत व्यक्तियों के अधिकारों का रक्षक और निगराँ है। इस दृष्टि से राज्य के प्रशासक की ज़िम्मेदारी सबसे ज़्यादा है। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर *(रज़ि.)* की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "सुन लो! तुममें से प्रत्येक ज़िम्मेदार और निगराँ है और तुममें से प्रत्येक से उसकी रईयत (शासित/अधीनस्थ) के बारे में सवाल होगा। वह व्यक्ति जो लोगों का इमाम (रहनुमा/शासक) है वह ज़िम्मेदार और निगराँ है। उससे उसकी रईयत के बारे में सवाल होगा। मर्द अपने घरवालों का निगराँ है, उससे अपनी रईयत के बारे में पूछा जाएगा। औरत अपने पति के घर और उसके बच्चों की निगराँ है। उससे उनके बारे में सवाल होगा। आदमी का ग़ुलाम अपने मालिक के माल का निगराँ है और उससे उसके बारे में सवाल होगा। हाँ! सुन रखो तुम सब निगराँ हो और तुममें से प्रत्येक से अपनी रईयत के बारे में पूछताछ होगी।" (हदीस : बुख़ारी)

जुर्म अदालत से साबित होगा

क़ानून के सम्बन्ध में इस्लाम ने यह उसूल बयान किया है कि हर व्यक्ति को बेगुनाह समझा जाए और उसे उसी वक़्त मुजरिम समझा जाए जबकि अदालत से उसका जुर्म साबित हो जाए। इसके लिए उसने गवाही का व्यापक नियम निर्धारित किया है। बिना सुबूत किसी को मुजरिम बताना उसकी इज़्ज़त और आबरू से खेलना है। इस्लाम के निकट यह दण्डनीय अपराध है। इसी सन्दर्भ में उसने अफ़वाहों को फैलाने और अनुमान तथा अन्दाज़े से काम लेने से भी मना किया है।

बयान किया जाता है कि इराक़ से एक व्यक्ति हज़रत उमर *(रज़ि.)* की ख़िदमत में पहुँचा और कहा कि मैं एक ऐसे मामले की ख़बर देने के लिए हाज़िर हुआ हूँ जिसका सिर है न दुम (अर्थात जो बेसिर-पैर की है)। हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने पूछा कि वह क्या है? उसने कहा, झूठी

गवाहियाँ। इसपर हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने फ़रमाया—

"क़सम खुदा की, इस्लाम में कोई व्यक्ति उदूल (विश्वसनीय गवाह) के बग़ैर क़ैद नहीं किया जा सकता।"

(हदीस : मुवत्ता इमाम मालिक)

किसी को क़ैद की सज़ा उसी वक़्त दी जाएगी जबकि विश्वसनीय गवाहियों से साबित हो जाए कि वास्तव में उसने जुर्म किया है और इस सज़ा का पात्र है।

किसी को ग़ुलाम नहीं बनाया जा सकता

कभी-कभी इनसान की मजबूरी से फ़ायदा उठाकर उसे बेच दिया जाता था। कोई क़र्ज़ न चुका पाता तो उसे बेचकर क़र्ज़ वुसूल किया जाता था। यह एक अशोभनीय कृत्य था। इस्लाम ने इसे ख़त्म किया। किसी की आज़ादी को छीनना, उसे बेचना या ग़ुलाम को आज़ाद करने के बाद फिर उसे ग़ुलाम बना लेना और ग़ुलामों की तरह उससे सेवा लेना, ये सारी चीज़ें इस्लाम में वर्जित हैं। इसपर चेतावनी दी गई है। हज़रत अबू-हुरैरा *(रज़ि.)* ने अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* से यह हदीसे-क़ुदसी (क़ुरआन से इतर मुहम्मद *(सल्ल.)* के मुबारक मुँह से उच्चारित अल्लाह के शब्द) नक़ल की है—

"(अल्लाह फ़रमाता है कि) मैं क़ियामत के दिन तीन आदमियों का विरोधी हूँगा, एक वह व्यक्ति जिसने मेरे नाम पर वादा किया फिर धोखा दिया, दूसरा वह जिसने किसी को बेचा और उसकी क़ीमत खा गया और तीसरा वह जिसने किसी मज़दूर को मज़दूरी पर रखा और उससे पूरा काम लिया और उसकी मज़दूरी नहीं दी।" (हदीस : बुख़ारी)

इस्लाम ग़ुलाम को आज़ाद करने हेतु प्रेरित करता है। किसी आज़ाद व्यक्ति को ग़ुलाम बनाना उसके निकट संगीन जुर्म है। इसी प्रकार किसी से सेवा लेना और मज़दूरी न देना या बेगार कराना कठोर दण्ड का कारण है। जो व्यक्ति ऐसा करे उसकी नमाज़ और अन्य इबादतें भी अल्लाह के यहाँ मान्य न होंगी। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस

(रज़ि.) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "अल्लाह तीन लोगों की नमाज़ क़बूल नहीं करता, उनमें से एक वह व्यक्ति है जिसने अपने आज़ाद किए हुए ग़ुलाम को पुनः ग़ुलाम बना लिया।" (हदीस : अबू-दाऊद)

इन अमानवीय कृत्यों की रोकथाम के लिए राज्य उचित क़ानून बना सकता है।

किसी को नाहक़ सज़ा नहीं दी जा सकती

हदीस में आता है कि नाहक़ किसी के कपड़े उतार लेना या उसकी पीठ पर कोड़े बरसाना ख़ुदा के ग़ज़ब को दावत देना है। हदीस की किताबों में से तबरानी से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "जो व्यक्ति नाहक़ किसी मुसलमान की पीठ को कपड़े उतारकर नंगा कर दे वह अल्लाह से इस हाल में मिलेगा कि वह उसपर सख़्त ग़ज़बनाक होगा।" (हदीस : तबरानी)

उपरोक्त हदीस में सम्बोधन मुस्लिम समाज की ओर है, इसलिए मुसलमान का ज़िक्र आया है। यही हुक्म ग़ैर-मुस्लिम और ज़िम्मी (इस्लामी राज्य के ग़ैर-मुस्लिम नागरिक) का भी है। इस्लाम के अनुसार नाहक़ किसी भी व्यक्ति को किसी प्रकार की सज़ा देना संगीन जुर्म और ख़ुदा के क्रोध को भड़काना है। सज़ा के लिए जुर्म का साबित होना ज़रूरी है, जिस स्तर का जुर्म है, उसी स्तर की सज़ा होगी।

इज़्ज़त-आबरू का अधिकार

इनसान के अन्दर स्वाभिमान एवं आत्मसम्मान की प्राकृतिक भावना पाई जाती है। उसका यह अधिकार है कि उसका अपमान या बेइज़्ज़ती न हो, उसे बदनाम और लांछित न किया जाए और समाज में उसका सम्मान हो। उसे इज़्ज़त की नज़र से देखा जाए। इस्लाम ने इनसान की इस प्राकृतिक एवं स्वाभाविक माँग को नैतिक और क़ानूनी हैसियत दी है। इस्लाम के निकट किसी शरीफ़ और सभ्य इनसान की इज़्ज़त-आबरू

से खेलना संगीन जुर्म है। अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* ने पाकदामन और सीधी-सादी महिला पर बदकारी के झूठे तथा निराधार आरोप को 'बड़े गुनाहों' की श्रेणी में रखा है। हदीस में है कि नबी *(सल्ल.)* ने 'बड़े गुनाहों' का उल्लेख करते हुए फ़रमाया—

> "......और पाकदामन, भोली-भाली औरतों पर तोहमत (मिथ्यारोपण) लगाना।" (हदीस : बुख़ारी)

क़ुरआन ने इस कुकृत्य पर अस्सी कोड़ों की सज़ा रखी है। क़ुरआन में है—

> "जो लोग पाकदामन और शरीफ़ औरतों पर तोहमत लगाएँ और उसपर चार गवाह न पेश करें तो उनको अस्सी कोड़े मारो और कभी उनकी गवाही स्वीकार न करो। यही लोग फ़ासिक़ (झूठे) हैं।" (क़ुरआन, 24:4)

उपरोक्त आयत में पाकदामन औरतों पर व्यभिचार की तोहमत (मिथ्यारोपण) का हुक्म बयान हुआ है। यही हुक्म शरीफ़ और सदाचारी पुरुषों पर भी लागू है। यदि उनपर व्यभिचार की तोहमत लगाई जाए और इसका सुबूत पेश न किया जाए तो इसकी भी यही सज़ा है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि तोहमत लगानेवाला पुरुष है या स्त्री, शर्त केवल इतनी है कि वह व्यस्क हो और होश-हवास रखता हो।

व्यभिचार की तोहमत के बारे में यह स्पष्ट आदेश है। व्यभिचार के अतिरिक्त कोई अन्य तोहमत लगाई जाए जैसे—फ़ासिक़ व फ़ाजिर कहा जाए अथवा चोरी और शराब पीने का (झूठा) आरोप लगाया जाए तो इस पर यह हद (दण्ड) तो जारी नहीं होगी, हाँ उसे अन्य सज़ा दी जा सकती है।

इस्लाम ने इज़्ज़त व आबरू को इनसान का मौलिक अधिकार ही नहीं माना बल्कि उसकी सुरक्षा के लिए व्यापक क़ानून भी दिया है।

सफ़र का अधिकार

इस्लाम ने इनसान का यह हक़ भी स्वीकार किया है कि वह अपनी

आध्यात्मिक अथवा सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ज़मीन में एक जगह से दूसरी जगह का सफ़र कर सकता है। उसने ज़मीन पर चल-फिरकर प्रकृति की विविधता, सन्तुलन एवं अजूबों को देखने और उनका अध्ययन करने की प्रेरणा दी है ताकि इनसान इतिहास के खंडहरों, पुरातात्विक महत्त्व की वस्तुओं को देखकर शिक्षा ले सके। इसी प्रकार मानवीय ज़रूरतों की पूर्ति के लिए भी उसने सफ़र की इजाज़त दी है। उसने बार-बार अल्लाह के इस उपकार का उल्लेख किया है कि उसने ज़मीन की रचना इस प्रकार की है कि इनसान अपने उद्देश्यों के लिए उसपर आसानी से सफ़र कर सकता है। क़ुरआन में है–

> "(अल्लाह वह है) जिसने तुम्हारे लिए ज़मीन को फ़र्श बनाया और तुम्हारे लिए उसमें रास्ते निकाल दिए ताकि तुम मंज़िल तक पहुँच सको।" (क़ुरआन, 43:10)

क़ुरआन में एक अन्य जगह कहा गया है–

> "अल्लाह वह है जिसने तुम्हारे लिए ज़मीन को फ़र्श बना दिया है ताकि तुम उसके विस्तृत रास्तों पर चलो।" (क़ुरआन, 71:19-20)

इस्लाम ने सफ़र की हालत में कुछ फ़राइज़ और वाजिबात (अनिवार्य इबादतों) में रिआयतें दी हैं। समाज का कर्त्तव्य है कि वह मुसाफ़िरों की मदद करे और उन्हें सुविधाएँ जुटाए। बैतुलमाल (इस्लामी स्टेट का राजकोष) में उनका हक़ रखा है और जो लोग अपनी मजबूरियों के कारण आजीविका की खोज के लिए सफ़र नहीं कर सकते, उनके साथ हमदर्दी का हुक्म दिया है। यह भी इस बात की दलील है कि इनसान आवश्यकतानुसार आध्यात्मिक एवं सांसारिक उद्देश्यों के लिए सफ़र कर सकता है। इस्लाम इसे जाइज़ क़रार देता है और इसमें मदद करता है। कुछ परिस्थितियों में तो सफ़र इस्लाम के नज़दीक पसन्दीदा अमल है। इसमें ग़ैर-ज़रूरी पाबन्दियों का वह पक्षधर नहीं है।

मज़लूम (ज़ुल्म से पीड़ित व्यक्ति) का अधिकार

इस्लाम ने इनसान का यह अधिकार स्वीकार किया है कि वह

भयमुक्त एवं शान्तिमय जीवन गुज़ारे। उसकी जान-माल और इज़्ज़त-आबरू को कोई ख़तरा न हो। उसपर हाथ डाला जाए तो उसे उसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने का हक़ प्राप्त रहे। वह अदालत में जा सके और जनता के सामने भी अपना मुक़द्दमा पेश करने की उसे इजाज़त हो। क़ुरआन में है—

> "अल्लाह बुरी बात के इज़हार (प्रकटीकरण) व एलान को पसन्द नहीं करता, अलबत्ता जिसपर ज़ुल्म हुआ है (उसे इसका हक़ है)।" (क़ुरआन, 4:148)

एक ओर मज़लूम का यह क़ानूनी और नैतिक अधिकार स्वीकार किया गया है कि वह ज़ुल्म के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाए और इनसाफ़ की माँग करे, दूसरी ओर समाज की यह ज़िम्मेदारी क़रार दी गई है कि वह आगे बढ़े और मज़लूम की मदद करे। अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* ने मज़लूम की मदद को उसका लाज़िमी हक़ बताया है और यह भी हिदायत फ़रमाई है कि ज़ालिम का किसी पहलू से समर्थन न हो। ज़ुल्म का समर्थन इस्लाम की मूल भावना के विपरीत है। हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* ने कहा है—

> "जो व्यक्ति किसी ज़ालिम के साथ, यह जानते हुए कि वह ज़ालिम है, उसे ताक़त पहुँचाने के लिए (अर्थात उसका मनोबल बढ़ाने के लिए) चले तो वह इस्लाम से ख़ारिज हो गया।" (हदीस : मिश्कात)

न्याय और इनसाफ़ की स्थापना के लिए समाज में मज़लूम के साथ सहयोग और ज़ालिम से असहयोग का पाया जाना ज़रूरी है। परन्तु इसमें राज्य की भूमिका की बड़ी अहमियत है।

इस्लामी रियासत (राज्य) मज़लूम को उसका हक़ दिलाने के लिए वचनबद्ध है। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने ख़िलाफ़त की ज़िम्मेदारी मिलने के बाद जो पहला ख़ुत्बा (भाषण) दिया उसमें हुकूमत की पॉलिसी बयान करते हुए फ़रमाया—

> "तुममें जो ज़ईफ़ (असहाय/कमज़ोर) है वह मेरे नज़दीक ताक़तवर होगा, यहाँ तक कि मैं उसका हक़ लेकर उसे पहुँचा

दूँ। और जो तुममें ताक़तवर है वह मेरे नज़दीक कमज़ोर होगा, यहाँ तक कि उसके पास दूसरे का जो हक़ है वह उससे मैं ले लूँ। इंशाअल्लाह।" (इब्ने-असीर)

जब मज़लूम की पीठ पर हुकूमत की ताक़त हो और वह न्याय और इनसाफ़ की स्थापना को अपनी बुनियादी ज़िम्मेदारी क़रार दे तो कमज़ोर से कमज़ोर व्यक्ति का भी हक़ मारा नहीं जा सकता।

☆☆☆

बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति का हक़

इनसान की बुनियादी ज़रूरतें

मानव जीवन के सम्मान की अवधारणा के साथ उसकी बुनियादी ज़रूरतों की पूर्ति की अवधारणा भी जुड़ी हुई है। इस्लाम प्रत्येक इनसान का यह हक़ तसलीम करता है कि वह अपनी ज़रूरतों के लिए प्रयास और जिद्दो-जुहद करे। इसके लिए वह अल्लाह की सम्पूर्ण धरती और उसके संसाधनों का उपयोग कर सकता है। इनसान की बुनियादी ज़रूरतों में खाना, लिबास, मकान आदि ज़रूरतें शामिल हैं। इनमें से प्रत्येक के सम्बन्ध में इस्लाम ने स्पष्ट रूप से बताया है। वह इनमें से किसी के भी प्राप्त करने का विरोधी नहीं है, बल्कि वह तो इनकी प्रेरणा देता है।

आर्थिक जिद्दोजुहद

अल्लाह ने अपनी इस धरती में इनसान की आजीविका का भरपूर सामान रखा है। इसपर बसनेवाले प्रत्येक व्यक्ति का स्वाभाविक अधिकार है कि इसे हासिल करे और फ़ायदा उठाने का प्रयास करे। क़ुरआन में एक जगह है–

> "वही ख़ुदा है जिसने ज़मीन को तुम्हारे अधीन कर दिया कि इसके किनारों (रास्तों) पर चलो और उसका दिया हुआ रिज़्क़ (आजीविका/भोजन) खाओ और उसी की ओर पलटकर जाना है।" (क़ुरआन, 67:15)

> एक अन्य जगह फ़रमाया–
>
> "अल्लाह ही है जिसने तुम्हारे लिए समुद्र को मुसख़्ख़र (वशीभूत) कर दिया ताकि उसके हुक्म से कश्तियाँ उसमें चलें और ताकि तुम उसका फ़ज़्ल (रिज़्क़) तलाश करो और शायद कि तुम उसका शुक्र अदा करो। उसने तुम्हारे लिए वे सब चीज़ें अपनी ओर से मुसख़्ख़र (वशीभूत) कर दीं जो आसमानों में हैं और ज़मीन में हैं। बेशक इसमें सोचनेवालों के लिए

निशानियाँ हैं।" (क़ुरआन, 45:12-13)

जुमे की नमाज़ की अहमियत और उसमें उपस्थित होने को अनिवार्य घोषित करने के बाद फ़रमाया—

> "जब नमाज़ ख़त्म हो जाए तो ज़मीन में फ़ैल जाओ और अल्लाह के फ़ज़्ल को तलाश करो और अल्लाह को निरंतर याद रखो, उम्मीद है तुम फ़लाह (सफलता) पाओगे।"
>
> (क़ुरआन, 62:10)

मतलब यह कि नमाज़ ख़त्म होने के बाद तुम्हें इजाज़त है कि अल्लाह के फ़ज़्ल की तलाश अर्थात् आजीविका की खोज में ज़मीन में फैल जाओ। सम्पूर्ण धरती तुम्हारे लिए है। इसके संसाधनों से फ़ायदा उठाने का तुम्हें हक़ है।

इनसान और अन्य प्राणियों में अन्तर यह है कि इनसान स्वभावतः साफ़-सुथरा और शुद्ध भोजन चाहता है। गन्दा और नापाक (अशुद्ध/अपवित्र) भोजन उसके स्वभाव से मेल नहीं खाता और वह उसके लिए हानिकारक भी है। खाने-पीने की जिन चीज़ों को वह उनकी असली हालत में इस्तेमाल करता है वे भी साफ़-सुथरी होनी चाहिएँ और जिन चीज़ों को वह पकाकर स्वादिष्ट एवं सुपाच्य बनाकर इस्तेमाल करता है उन्हें भी गन्दगी से पाक होना चाहिए।

इस्लाम के निकट एक इनसान का यह बुनियादी हक़ है कि वह अपने प्रयास से पाक और साफ़-सुथरा भोजन प्राप्त करे। यह तक़वा (ईशभय) और दीनदारी (ईशपरायणता) के विपरीत नहीं है। हाँ, इस प्रयास में हलाल और हराम की पाबन्दी ज़रूरी है। क़ुरआन में है—

> "ऐ लोगो! खाओ ज़मीन की चीज़ों में से वे सभी चीज़ें जो हलाल और पाकीज़ा हैं, और शैतान की पैरवी (अनुसरण) न करो। बेशक वह तुम्हारा खुला दुश्मन है। वह तुम्हें बुराई और बेहयाई (निर्लज्जता) का हुक्म देता है और इस बात का कि तुम अल्लाह के बारे में झूठी बातें कहो जिनका तुम्हें इल्म नहीं है।" (क़ुरआन, 2:168-169)

लिबास

इनसान की बुनियादी ज़रूरतों में लिबास भी शामिल है। इनसान के लिए लिबास का महत्त्व कई कारणों से है। यह उसे जानवरों से अलग करता है। जो जानवर जहाँ पाया जाता है, उसकी शारीरिक बनावट वहाँ के परिवेश के अनुकूल होती है। यदि मौसम सख़्त हो जाता है तो वह दूसरी जगह चला जाता है। इनसान की स्थिति इससे भिन्न है। उसका शरीर मौसम की गरमी और सख़्ती को सहन नहीं कर पाता। वह लिबास के द्वारा उसका मुक़ाबला करता है। लिबास के सन्दर्भ में एक पहलू यह भी है कि जानवरों में लज्जा-शर्म जैसी अनुभूति नहीं पाई जाती। इसके विपरीत इनसान के स्वभाव एवं प्रकृति में लज्जा पाई जाती है। निर्वस्त्रता उसकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है। वह शरीर के ख़ास हिस्सों को अनिवार्य रूप से छिपाना चाहता है। यह प्राकृतिक और नैसर्गिक लज्जा ही थी कि हज़रत आदम *(अलैहि.)* व हव्वा से जन्नत का लिबास छिन गया तो वे पेड़ के पत्तों से अपने शरीर को छिपाने लगे। क़ुरआन में है—

> "......और वे अपने ऊपर बाग़ के पत्ते जोड़-जोड़कर रखने लगे।" (क़ुरआन, 7:22)

लिबास के सन्दर्भ में तीसरा पहलू यह है कि लिबास इनसान के सौन्दर्य-बोध से जुड़ा है, और उसके बनाव-शृंगार का कारण है। क़ुरआन में है—

> "ऐ आदम की औलाद! हमने तुमपर लिबास उतारा है जो तुम्हारे गुप्त अंगों को छिपाता है और ज़ीनत (शोभा) के लिबास भी उतारे, परन्तु तक़वा (ईशपरायणता) का लिबास बेहतर है। यह अल्लाह की क़ुदरत (सामर्थ्य) की निशानियाँ हैं, शायद वे इससे नसीहत (शिक्षा) हासिल करें।"
>
> (क़ुरआन, 7:26)

इस प्रकार इस्लाम ने लिबास और बेहतर लिबास की ज़रूरत और अहमियत पर बल दिया है। वह इसे इनसान की बुनियादी ज़रूरत मानता है। हाँ, इस सन्दर्भ में उसकी हिदायत यह है कि आदमी इस

ऊपरी लिबास के चक्कर में तक़वा रूपी (धर्मपरायणता के) लिबास को न भूल बैठे।

मकान

मकान भी इनसान की बुनियादी ज़रूरत है। मकान विभिन्न प्रकार के होते हैं, हर एक की अपनी जगह अहमियत है। क़ुरआन ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है–

> "अल्लाह ने तुम्हारे लिए तुम्हारे घर रहने-बसने की जगह बनाई और तुम्हारे लिए चौपायों की खालों से घर (ख़ेमे) बनाए कि तुम उन्हें हल्के पाते हो अपने कूच के दिन और अपने ठहरने के दिन। उसने चौपायों की ऊन से, रोवों से और बालों से एक अवधि तक के लिए साज़ो-सामान और जीवन के साधन बनाए। अल्लाह ने तुम्हारे लिए अपनी बनाई हुई चीज़ों में साए (छाँवों) रखे और तुम्हारे लिए पहाड़ों में छुपने के स्थान रखे और उसने तुम्हारे लिए लिबास बनाए जो तुम्हें गर्मी से बचाते हैं और ऐसे लिबास (ज़िरहें/कवच) भी बनाए जो जंग में तुम्हारी हिफ़ाज़त करते हैं। इस प्रकार अल्लाह अपनी नेमत तुमपर पूरी करता है ताकि तुम उसके फ़रमाँबरदार (आज्ञाकारी) बनो।" (क़ुरआन, 16:80-81)

इन आयतों में तीन तरह के मकानों का उल्लेख है—

1. वे ठिकाने जो इनसान पहाड़ों और जंगलों में बनाता है। सम्भव है कि इस तरह के मकानों को इनसान ने इतिहास के प्रारम्भिक काल में आमतौर पर इस्तेमाल किया हो परन्तु अब वह अधिकतर इन्हें अपनी जंगी-ज़रूरतों के लिए इस्तेमाल करता है। सामयिक एवं आपात स्थिति में ग़ैर-जंगी उद्‌देश्यों के लिए भी इनकी ज़रूरत पड़ सकती है।

2. दूसरे मकान वे हैं जो ख़ेमों और छोलदारियों के रूप में बनाए जाते हैं और एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से स्थानान्तरित हो सकते हैं। इन्हें ख़ानाबदोश इस्तेमाल करते हैं। पर्यटन अथवा फ़ौजी ज़रूरत के लिए भी इनका इस्तेमाल हो सकता है।

3. मकानों का तीसरा प्रकार वह है जिनके लिए क़ुरआन ने 'सकना' शब्द इस्तेमाल किया है। इनमें इनसान स्थायी रूप से निवास करता है। इनसे उसकी आवासीय आवश्यकताएँ पूरी होती हैं और इनमें वह सुकून और राहत अनुभव करता है। इस प्रकार के मकान सांस्कृतिक जीवन का एक अभिन्न अंग भी हैं।

विभिन्न प्रकार के मकानों, सामान्य वस्त्रों और जंगी लिबास के सम्बन्ध में ऊपर की आयतों में दो बातें कही गई हैं। एक यह कि वे इनसान की ज़रूरतें पूरी करती हैं और दूसरे यह कि उनकी हैसियत अल्लाह की नेमत, फ़ज़्ल और एहसान की है। इसका अर्थ यह है कि यदि किसी के पास मकान है तो उसे अल्लाह की एक नेमत हासिल है। इसपर उसे अल्लाह का शुक्र अदा करना चाहिए। यदि किसी के पास मकान नहीं है तो इसके लिए उसका प्रयास करना ग़लत न होगा, बल्कि एक पसन्दीदा काम समझा जाएगा। कारण यह कि वह अल्लाह की एक नेमत की तलाश करता है और इसलिए तलाश करता है कि वह इस मामले में दूसरों का मोहताज न रहे।

मकान एक ज़रूरत है। इस्लामी स्टेट अपने कर्मचारियों की यह ज़रूरत पूरी करेगी, बल्कि उसकी कोशिश होगी कि राज्य के सभी नागरिकों को इसकी सुविधा प्राप्त हो। इसमें वह हर सम्भव सहयोग देगी। जिनके पास मकान है, उनका मालिकाना हक़ स्वीकार करेगी और उसकी सुरक्षा करेगी।

सेवक और सवारी

इस्लाम इस बात को स्वीकार करता है कि सवारी और सेवक भी इनसान की ज़रूरत है और वह उसे प्राप्त होनी चाहिए। मस्तूरद-बिन-शद्दाद *(रज़ि.)* कहते हैं कि मैंने अल्लाह के नबी मुहम्मद *(सल्ल.)* को फ़रमाते सुना है—

> ''जो हमारा आमिल (कारिन्दा) है वह अविवाहित है तो (राजकोष से मदद लेकर) विवाह कर ले, यदि उसके पास ख़ादिम (सेवक) नहीं है तो ख़ादिम हासिल कर ले, यदि उसका मकान नहीं है तो मकान बना ले। एक रिवायत में यह भी है

कि जो व्यक्ति इनके अतिरिक्त कुछ और बैतुलमाल से प्राप्त करे वह ख़ाइन (बददियानत) होगा।" (हदीस : अबू-दाऊद)

हदीस में राज्य के मुलाज़िम को अपनी वास्तविक ज़रूरतें पूरी करने की इजाज़त दी गई है कि स्पष्ट है कि यह इजाज़त कुछ नियम-सिद्धान्त की सीमा से बँधी होगी और इसका सम्बन्ध राज्य की आर्थिक स्थिति से भी होगा। यदि किसी का वेतन ही उसकी ज़रूरतों की पूर्ति के लिए पर्याप्त है तो वह राज्य के ख़ज़ाने से और कुछ पाने का अधिकारी न होगा।

आर्थिक खुशहाली

इस्लाम आर्थिक खुशहाली को ग़लत नहीं समझता, बल्कि उसका वादा है कि इनसान अल्लाह के आदेशों का पालन करे और उसके हाथों अल्लाह के दीन (इस्लाम) की स्थापना हो जाए तो आर्थिक खुशहाली मिलेगी। क़ुरआन में कहा गया है—

"यदि वे (किताबवाले/यहूदी और ईसाई) क़ायम करते तौरात और इंजील को और उस (क़ुरआन) को जो उनके रब की ओर से उनपर उतारा गया है तो अपने ऊपर (आसमान) से भी खाते और अपने पैरों के नीचे (ज़मीन के अन्दर) से भी। उनमें से कुछ तो एतिदाल की राह (संमार्ग) पर क़ायम हैं, परन्तु उनमें से अधिकतर वे हैं जो बुरे काम कर रहे हैं।"

(क़ुरआन, 5:66)

धन की अहमियत (महत्व) को इस्लाम ने नज़रअन्दाज़ नहीं किया है बल्कि इसे स्वीकार किया है और इसे जीवन की स्थापना एवं विकास का माध्यम कहा है। क़ुरआन में है—

"अपने अमवाल (धनों को), जिन्हें अल्लाह ने तुम्हारी जीवन-स्थापना का माध्यम बनाया है, नादानों (मूर्खों) के हवाले मत करो।" (क़ुरआन, 4:5)

माल आदमी के पास हो और वह उसे नेकी की राह में ख़र्च करे तो यह प्रशंसनीय है। हदीस में आता है कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद

(सल्ल.) नें फ़रमाया–

> "हसद (ईर्ष्या) तो बस दो आदमियों पर है। एक वह व्यक्ति जिसे अल्लाह ने माल दिया और उसने अपने माल को राहे-हक़ (सत्य मार्ग) में लुटाने पर लगा दिया। दूसरा वह व्यक्ति जिसे अल्लाह ने हिकमत (दीने-इस्लाम की सूझबूझ) से परिपूर्ण किया। वह उसके ज़रीए से फ़ैसला करता है और दूसरों को उसकी शिक्षा देता है।" (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत सअ्द *(रज़ि.)* से उद्धृत है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया–

> "बेशक अल्लाह मुहब्बत करता है उस बन्दे से जो तक़्वा (ईशभय) वाला है, धनी एवं दानशील है, सामर्थ्यवान है, और पोशीदा (छिपा) रहता है।" (हदीस : मुस्लिम)

मतलब यह कि वह दानशील व्यक्ति जो ख़ामोशी से अपनी दौलत ख़र्च करता है उसको प्रकट करना नहीं चाहता और न ही शोहरत और दिखावा चाहता है बल्कि अपने आप को परदे के पीछे रखता है। ऐसा व्यक्ति अल्लाह को बहुत प्रिय है।

हज़रत अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* कहते हैं कि अल्लाह के नबी मुहम्मद *(सल्ल.)* ने फ़रमाया–

> "स्वच्छ माल अच्छा है स्वच्छ एवं नेक व्यक्ति के लिए।"
>
> (हदीस : मुस्नद अहमद)

तात्पर्य यह कि माल जाइज़ तरीक़े से अर्जित हो और वह नेक हाथों में हो तो नापसन्दीदा नहीं बल्कि पसन्दीदा चीज़ है। यह अल्लाह के दीन (इस्लाम) और उसके बन्दों की ख़िदमत (सेवा) का अच्छा ज़रीआ है। इससे स्पष्ट होता है कि जाइज़ सीमा के अन्दर माल कमाने की कोशिश करना ग़लत नहीं है। इस्लाम इसके लिए अवसर एवं सुविधाएँ उपलब्ध कराता है।

हुकूमत की ज़िम्मेदारी

इस्लामी राज्य कल्याणकारी राज्य है। अगर कोई व्यक्ति अपनी

बुनियादी ज़रूरतें पूरी न कर सके तो इस्लामी स्टेट का कर्त्तव्य है कि उसकी ज़रूरतें पूरी करे। वह हर उस व्यक्ति के भरण-पोषण की ज़िम्मेदार है जो ग़रीब और निर्धन है और अपना आर्थिक बोझ उठाने के योग्य नहीं है। अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* ने आर्थिक भरण-पोषण का जो एलान किया उसका उल्लेख हज़रत अबू-हुरैरा *(रज़ि.)* ने इस प्रकार किया है—

> "जब अल्लाह ने सामरिक सफलताओं का दरवाज़ा आप *(सल्ल.)* पर खोल दिया है तो आपने एलान फ़रमाया : मैं मोमिनों (मुसलमानों) की जानों से ज़्यादा उनके क़रीब हूँ, जिस किसी का इन्तिक़ाल हो जाए, उसपर क़र्ज़ हो और वह उसकी अदायगी के लिए कोई चीज़ न छोड़े तो उसका अदा करना मेरे ज़िम्मे होगा, और कोई माल (धन) छोड़कर जाए तो वह उसके वारिसों (उत्तराधिकारियों) का होगा।"
>
> एक रिवायत में है कि "जो व्यक्ति क़र्ज़ अथवा बाल-बच्चे, जिनके हलाक होने का ख़तरा हो, छोड़कर जाए, वे मेरे पास आएँ। मैं उनका सरपरस्त हूँ।" एक और रिवायत में है कि "जो माल छोड़कर दुनिया से जाए तो वह उसके वारिसों का होगा, और जो कोई बोझ (क़र्ज़ या निर्धन बाल-बच्चे) छोड़कर जाए तो वह हमारे ज़िम्मे होगा।" (हदीस : मिश्कात)

मदीना के आरम्भिक काल में अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* का तरीक़ा यह था कि जब किसी का इन्तिक़ाल होता तो आप पूछते कि क्या उसपर कोई क़र्ज़ है? और है, तो क्या उसने इतना माल छोड़ा है कि उससे क़र्ज़ अदा हो सके? अगर बताया जाता कि उसके माल से क़र्ज़ की अदायगी हो सकती है तो आप *(सल्ल.)* उसकी जनाज़े की नमाज़ पढ़ते अन्यथा कह देते कि जाओ तुम लोग नमाज़ पढ़ लो।

(यह चेतावनी थी कि लोग क़र्ज़ के मामले में लापरवाही से काम न लें और मरने से पहले उसका इन्तिज़ाम करें।) हाँ, कभी कोई व्यक्ति मय्यत की ओर से क़र्ज़ की अदायगी का ज़िम्मा ले लेता तो आप उसकी नमाज़े-जनाज़ा पढ़ते थे (बुख़ारी)। परन्तु बाद के दौर में आपने यह ज़िम्मेदारी ख़ुद ले ली।

"जब अल्लाह ने सामरिक सफलताओं का दरवाज़ा आप पर खोल दिया" उपर्युक्त हदीस में प्रयुक्त इन शब्दों से स्पष्ट है कि राज्य पर असहायों के भरणपोषण अथवा निर्धन और मोहताज क़र्ज़दारों के क़र्ज़ की अदायगी की ज़िम्मेदारी उस समय आएगी जब वह स्वयं सक्षम हो। सक्षम होते हुए भी राज्य अपनी ज़िम्मेदारी को अपने संसाधनों के अनुरूप पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से (अपनी सक्षमता के अनुसार) अदा न करे तो वह अपने कर्त्तव्य के निभाने में लापरवाह समझा जाएगा और गुनहगार ठहरेगा। (इब्ने-हजर)

सांसारिक जीवन ही एकमात्र उद्देश्य न बन जाए

इस्लाम ने जाइज़ माध्यमों से आर्थिक विकास पर पाबन्दी नहीं लगाई है। इस मामले में व्यक्ति को राज्य का सहयोग प्राप्त होगा। आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर और असमर्थ व्यक्ति एवं वर्गों की वह मदद करेगा। इसके साथ ही इस्लाम इस बात की ओर बार-बार ध्यान दिलाता है कि सांसारिक जीवन ही व्यक्ति का एकमात्र उद्देश्य न बन जाए। इसकी हवस और इसे प्राप्त करने की तड़प में इनसान अल्लाह की याद से ग़ाफ़िल न हो जाए।

> "ऐ ईमानवालो! तुम्हारे माल और तुम्हारी औलादें तुम्हें अल्लाह की याद से ग़ाफ़िल न कर दें। जो ऐसा करें, वही घाटे में रहनेवाले हैं।" (क़ुरआन, 63:9)

इनसान अपनी इच्छाओं का दास बनकर दुनिया और माल समेटने में लग जाए तो आख़िरत (पारलौकिक जीवन) उसकी निगाह से ओझल होने लगती है। यह बहुत बड़ा नुक़सान है। इसलिए क़नाअत (भाग्यतुष्टि) की शिक्षा दी गई है। आदमी अपनी ज़रूरतों का दायरा सीमित रखे और उसे ज़्यादा न फैलाए। हज़रत उसमान *(रज़ि.)* की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "आदम के पुत्रों का (इस दुनिया में) कोई हक़ नहीं है सिवाय इन चीज़ों के — घर, जिसमें वह रहे, कपड़ा जिससे शरीर के ढके जानेवाले अंगों को ढक सके और सूखी रोटी और पानी।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

हज़रत बरीदा असलमी *(रज़ि.)* की रिवायत में ऊपर बयान की गई जीवन की आवश्यकताओं में कुछ और आवश्यकताओं का उल्लेख है, परन्तु साथ ही क़नाअत (सन्तोष) की शिक्षा भी दी गई है। फ़रमाते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने कहा—

> "तुममें से किसी भी व्यक्ति के लिए इस दुनिया में एक ख़ादिम (सेवक) और सवारी काफ़ी है।"
>
> (हदीस : मुस्नद अहमद)

> अबू-हाशिम-बिन-उतैबा (रज़ि.) ने ज़िन्दगी के अन्तिम क्षणों में अफ़सोस करते हुए कहा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने मुझसे फ़रमाया था कि एक वक़्त आएगा कि तुम्हारे सामने माल बाँटे जाएँगे। तुम्हारे लिए उनमें से एक ख़ादिम और एक सवारी, जो अल्लाह की राह में जिहाद के काम आए, काफ़ी है। मैंने वह ज़माना पाया और बहुत-सा माल जमा किया। काश! मैं उस वादे पर अडिग रहता जो आप *(सल्ल.)* से किया था। (हदीस : तिर्मिज़ी)

इनसान अपनी भौतिक आवश्यकताओं से बेनियाज़ (निस्पृह) नहीं हो सकता। इस्लाम उनकी पूर्ति के लिए एक मान्य सीमा के अन्तर्गत संघर्ष करने को सही समझता है और राज्य को उसमें सहयोग करने की हिदायत भी देता है, परन्तु वह यह नहीं चाहता कि इनसान दुनिया का ही दास बनकर रह जाए और अपने पारलौकिक जीवन को भुला बैठे।

सामाजिक एवं नागरिक अधिकार

इनसान जिस समाज में रहता है उसमें निष्क्रिय और बेजान ज़िन्दगी गुज़ारना नहीं चाहता बल्कि प्रभावी एवं सार्थक भूमिका निभाना चाहता है। यह उसका स्वाभाविक अधिकार है, और समाज भी उसी समय तरक़्क़ी कर सकता है जबकि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार प्रयास करने के अवसर प्राप्त हों और वह कुछ निर्धारित अधिकार एवं स्वतन्त्रताएँ रखता हो। दुनिया के सभी लोकतांत्रिक क़ानूनों में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता (Personal Liberty) इनसान का बुनियादी हक़ है, परन्तु किसी को इसकी इजाज़त नहीं दी जा सकती कि उस स्वतन्त्रता के द्वारा वह दूसरे की आज़ादी पर धावा बोले और उसे छीन ले। इसी कारण कहा जाता है, "There can not be freedom to destroy freedom." (आज़ादी, आज़ादी को तबाह करने के लिए नहीं हो सकती)।

इसी प्रकार राष्ट्रीय हित एवं देशहित, व्यक्तिगत हित से ऊपर है। कोई व्यक्ति यह अधिकार नहीं रखता और न उसे दिया जा सकता है कि वह अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से फ़ायदा उठाकर देश एवं राष्ट्र को नुक़सान पहुँचाए। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के विभिन्न पहलू हैं। इस्लाम ने उन सबके सम्मान की शिक्षा दी है और उनकी सीमाएँ निर्धारित की हैं।

विचार की स्वतन्त्रता

अल्लाह ने इनसान को बुद्धि एवं विवेक प्रदान किया है। उसका एक पृथक एवं प्रधान गुण यह है कि वह सोचने-समझने की क्षमता रखता है। इस्लाम इस क्षमता का परिमार्जन एवं विकास चाहता है और उसे दबाने एवं कुचलने की हर कोशिश के ख़िलाफ़ है। उसने इनसान को अन्धविश्वास एवं पाखण्ड से निकाला, चिन्तन-मनन एवं सोच-विचार के लिए प्रेरित किया। उसके निकट किसी मामले में बुद्धि से इतर रवैया अपनाना और बिना तर्क किसी तथ्य पर आग्रह करना मानव श्रेष्ठता के विपरीत है। उसने अन्धानुकरण और बे-सोचे-समझे पूर्वजों के तरीक़ों पर

चलना तथा परम्पराभक्ति की घोर आलोचना की है। वह कहता है कि विभिन्न क़ौमों का यह प्राचीन रोग है और इसी कारण वे तबाह होती रही हैं। क़ुरआन के अनुसार—

> "क्या हमने इन्हें इससे पहले कोई किताब दी है जिसे इन्होंने मज़बूती से पकड़ रखा हो? बल्कि कहते हैं कि हमने अपने बाप-दादा को एक तरीक़े पर पाया और हम उन्हीं के पदचिन्हों से हिदायत की राह पाए हुए हैं। और इसी प्रकार तुमसे पहले जिस बस्ती में भी हमने कोई डरानेवाला भेजा तो उसके सम्पन्न लोगों ने (यही) कहा कि हमने अपने बाप-दादा को एक तरीक़े पर पाया है और हम उन्हीं के पदचिन्हों पर चलते हैं। पैग़म्बर ने कहा कि यदि तुम्हारे सामने उससे ज़्यादा हिदायत एवं मार्गदर्शन का तरीक़ा पेश करूँ जिसपर तुमने अपने बाप-दादा को पाया है (तो क्या तब भी उसे स्वीकार न करोगे)। उन्होंने जवाब दिया कि जो दीन तुम लाए हो हम उसके माननेवाले नहीं हैं। फिर हमने उनसे इन्तिक़ाम (बदला) लिया। पस (अतः) देखो कि झुठलानेवालों का क्या अंजाम हुआ।" (क़ुरआन, 43:21-25)

इस्लाम हर बात को तर्क एवं दलील से समझने का रुझान पैदा करता है। उसे अपने विरोधियों से शिकायत है कि वे बुद्धि-विवेक से काम नहीं लेते और उसके तर्कों पर चिन्तन नहीं करते। क़ुरआन के शब्दों में—

> "हमने जिन्नों और इनसानों में से बहुतों को जहन्नम के लिए पैदा किया है। उनके दिल हैं परन्तु वे उनसे सोचते नहीं हैं, उनके आँखें हैं परन्तु वे उनसे देखते नहीं हैं, उनके कान हैं परन्तु वे उनसे सुनते नहीं हैं। ये लोग चौपायों की तरह हैं बल्कि उनसे भी ज़्यादा बेराह (पथभ्रष्ट)। यही लोग हैं जो भटके हुए हैं।" (क़ुरआन, 7:179)

इस्लाम ने चिन्तन-मनन पर बल देने के साथ ही मानव-बुद्धि की सीमा भी स्पष्ट की है और चिन्तन-मनन के लिए सही बुनियादें भी दी हैं। वह चाहता है कि बुद्धि का इस प्रकार इस्तेमाल हो कि आदमी हिदायत की राह पा सके।

अमल की आज़ादी (व्यवहार की स्वतन्त्रता)

अल्लाह ने इनसान को मजबूर पैदा नहीं किया है बल्कि कार्य एवं व्यवहार की आज़ादी दी है, वह अपनी स्वतन्त्र इच्छा से कोई भी क़दम उठा सकता है, परन्तु इस आज़ादी का निरंकुश प्रयोग तबाहकारी है। इसलिए इसपर किसी न किसी प्रकार की पाबन्दी एवं अंकुश ज़रूरी है। इस्लाम ने इनसान को व्यवहार की स्वतन्त्रता का हक़ दिया है परन्तु वह इसे कोई ऐसा क़दम उठाने की इजाज़त नहीं देता जो समाज के लिए हानिकारक हो तथा धरती पर बिगाड़ और विकृति का कारण हो। अल्लाह के पैग़म्बर जो इस दुनिया में आते रहे हैं, उनका एक ख़ास लक्ष्य यह भी रहा है कि अल्लाह की ज़मीन से फ़साद और बिगाड़ का अन्त हो और मानव-जाति को अमन-शान्ति का जीवन प्राप्त हो।

मदयन की क़ौम में हज़रत शुऐब *(अलैहि.)* पैग़म्बर बनाकर भेजे गए। वे तौहीद की दावत देने के साथ-साथ इस बात की भी हिदायत करते हैं कि लोग ख़ुदा की ज़मीन पर बिगाड़ और अशान्ति फैलाने से रुक जाएँ। क़ुरआन में है कि हज़रत शुऐब *(अलैहि.)* ने कहा—

> "ऐ मेरी क़ौम के लोगो! अल्लाह की इबादत करो। उसके अलावा तुम्हारा कोई माबूद (पूज्य) नहीं। तुम्हारे पास तुम्हारे रब की ओर से एक स्पष्ट प्रमाण आ चुका है, अतः नाप-तौल पूरी करो, लोगों को उनकी चीज़ें कम करके मत दो और ज़मीन में (अल्लाह के नेक बन्दों के ज़रीए) उसके सुधार के बाद बिगाड़ पैदा न करो। यह तुम्हारे लिए बेहतर है यदि तुम ईमान रखते हो, और रास्तों पर इसलिए न बैठो कि लोगों को डराओ और धमकाओ और जो ईमान लाए उसे अल्लाह के दीन से रोको और उसमें ख़ामी (त्रुटि) ढूँढो। याद करो जब तुम थोड़े थे तो अल्लाह ने तुम्हारी आबादी को बढ़ा दिया और ग़ौर करो कि बिगाड़ फैलानेवालों का (इससे पहले) क्या अंजाम हुआ।" (क़ुरआन, 7:85-86)

समूद की क़ौम बड़ी ख़ुशहाल और सांस्कृतिक दृष्टि से अपने समय की एक विकसित क़ौम थी, परन्तु उसके लीडरों ने धरती पर बिगाड़

फैलाने का रास्ता अपना रखा था। हज़रत सालेह *(अलैहि.)* ने इस गुमराह लीडरशिप के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई और क़ौम को दावत दी—

> "और हद से बढ़ जानेवालों का आज्ञापालन न करो, जो ज़मीन में फ़साद (बिगाड़) फैलाते हैं और इस्लाह (सुधार) नहीं करते।" (क़ुरआन, 26:151-152)

मुहम्मद *(सल्ल.)* के ज़माने में मदीना की इस्लामी रियासत भलाई, जनकल्याण, न्याय और इनसाफ़ का केन्द्र तथा दुनिया के लिए उत्कृष्ट नमूना थी, परन्तु मुनाफ़िक़ (मिथ्याचारी) इसे अपने छल-कपट से नुक़सान पहुँचाने की कोशिश कर रहे थे। क़ुरआन ने इस ख़ुफ़िया सरगर्मी को कई बार बेनक़ाब किया है। एक जगह फ़रमाया—

> "जब उनसे कहा जाता है कि ज़मीन में फ़साद (बिगाड़) पैदा न करो तो कहते हैं, हम तो बस इस्लाह (सुधार) करनेवाले हैं। ख़बरदार रहो कि यही फ़साद करनेवाले हैं, लेकिन समझते नहीं।" (क़ुरआन, 2:11-12)

भाग-दौड़ करना, प्रयास और संघर्ष करना तथा कोई काम करना आदि इनसान के स्वाभाविक हक़ हैं। इस्लाम इनपर कोई अंकुश नहीं लगाता, अलबत्ता वह उन प्रयासों के ख़िलाफ़ है जो समाज को फ़साद और बिगाड़ की ओर ले जाते हैं और अन्ततः उसे तबाही एवं बर्बादी के गड्ढे तक पहुँचा देते हैं।

मत-अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता

आज की लोकतान्त्रिक दुनिया में मत-अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को इनसान का एक बुनियादी हक़ स्वीकार किया जाता है और इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि हर व्यक्ति को अपने विचार एवं भावना को व्यक्त करने का अवसर मिलना चाहिए। दूसरे लोगों को इसे स्वीकार करने या रद्द करने का अधिकार है। परन्तु इस हक़ का निरंकुश इस्तेमाल समाज के लिए घोर हानिकारक भी हो सकता है, इसलिए इसपर कुछ पाबन्दियाँ भी लगाई जाती हैं।

इस्लाम के नज़दीक इनसान का यह स्वाभाविक अधिकार है कि उसकी ज़बान बन्द न की जाए, उसे अपने विचारों को प्रकट करने की

इजाज़त हो और वह उन्हें दूसरों के सामने पेश कर सके। परन्तु इस्लाम ने उसे कुछ सीमाओं का पाबन्द भी बनाया है। ये सीमाएँ ऐसी हैं कि व्यक्ति एवं समाज के लिए इनके औचित्य और फ़ायदे से इनकार नहीं किया जा सकता। इस्लाम ने जो सीमाएँ निर्धारित की हैं उनमें से कुछ ये हैं—

1. मत-अभिव्यक्ति के मामले में इनसान नैतिक सीमाओं एवं आदर्शों का सम्मान करे, दूसरों के आत्मसम्मान को समझे, उसे बदनाम करने और उसकी इज़्ज़त-आबरू से खेलने की कोशिश न करे। झूठ, गढ़ी हुई बातें, व्यंग्य, अभद्र एवं अमर्यादित शैली से बचे। क़ुरआन में है—

   "ऐ ईमानवालो! मर्द दूसरे मर्दों का मज़ाक़ न उड़ाएँ, हो सकता है कि वे उनसे बेहतर हों, और औरतें (भी) दूसरी औरतों का मज़ाक़ न उड़ाएँ, हो सकता है वे उनसे बेहतर हों। और एक-दूसरे को ताने न दो और बुरी उपाधियों से न पुकारो। ईमान के बाद फ़िस्क़ (अवज्ञाकारी) का नाम लगना बुरा है। जो लोग (इन हरकतों से) तौबा न करें वही ज़ालिम हैं। ऐ ईमानवालो! बहुत ज़्यादा गुमान से बचो। कुछ गुमान गुनाह होते हैं और तजस्सुस न करो (अर्थात एक-दूसरे की टोह में न रहो) और न एक-दूसरे की ग़ीबत (पर-निन्दा) करो। क्या तुममें से कोई पसन्द करेगा कि अपने मुर्दा भाई का मांस खाए। तुम इससे नफ़रत करते हो। अल्लाह से डरते रहो। बेशक अल्लाह तौबा क़बूल करनेवाला और रहीम है।"

   (क़ुरआन, 49:11-12)

यह इस्लाम की नैतिक शिक्षाओं का नमूना है। इस सन्दर्भ की और बहुत-सी नैतिक शिक्षाएँ क़ुरआन व हदीस में मौजूद हैं। उन्हें आवश्यकतानुसार क़ानूनी रूप भी दिया जा सकता है और उनकी सीमाएँ निर्धारित की जा सकती हैं।

2. विचार-अभिव्यक्ति के नाम पर बेहयाई (निर्लज्जता) और बदकारी (दुष्कर्म) के प्रचार-प्रसार की इजाज़त नहीं होगी। जो सोसाइटी

नैतिकता, सभ्यता एवं शिष्टता की अलमबरदार (ध्वजावाहक) हो वह किसी स्थिति में अनैतिकता के प्रचार-प्रसार का औचित्य नहीं उपलब्ध करा सकती। इस प्रकार के हर प्रयास को वह सख़्ती से रोक देगी।

"बेशक जो लोग चाहते हैं कि ईमानवालों के बीच बदकारी (दुष्कर्म) का चर्चा हो तो उसके लिए दुनिया और आख़िरत में दर्दनाक अज़ाब है। और अल्लाह जानता है, और तुम नहीं जानते।" (क़ुरआन, 24:19)

3. राज्य में असन्तोष और अशान्ति का वातावरण बनाने और देशहित एवं राष्ट्रहित को ख़तरे में डालने की इजाज़त नहीं होगी।

मुनाफ़िक़ और यहूदी इस्लामी रियासत के ख़िलाफ़ हर समय प्रयासरत रहते थे। उनका एक ख़ास हथकंडा यह भी था कि मुसलमानों के बीच ग़लत अफ़वाहें फैलाएँ और जंग की हालत में उनकी असफलता अथवा पराजय की भविष्यवाणी करते रहें। वे किसी तात्कालिक नुक़सान की चर्चा इस प्रकार करते जैसे उससे उबरना सम्भव ही नहीं। वे ऐसा इसलिए करते ताकि मुसलमानों की हिम्मत पस्त हो जाए और वे अपनी हिम्मत और हौसला खो बैठें। इसका सम्बन्ध रियासत की सलामती एवं सुरक्षा से था इसलिए उनके ख़िलाफ़ सख़्त क़दम उठाने की हिदायत की गई।

"यदि मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) और वे लोग जिनके दिलों में रोग है और मदीना में झूठी ख़बरें फैलानेवाले (अपनी हरकतों से) बाज़ न आएँ तो हम ज़रूर आपको उनपर मुसल्लत कर देंगे और फिर वे मदीना में आपके क़रीब कुछ दिन से ज़्यादा नहीं ठहर सकेंगे। लानत है उनपर, वे जहाँ कहीं पाए जाएँ पकड़े जाएँ और बुरी तरह मारे जाएँ। यही अल्लाह का तरीक़ा रहा है उन लोगों में जो इससे पहले गुज़र चुके हैं। तुम इस तरीक़े में कोई तब्दीली न पाओगे।" (क़ुरआन, 33:60-62)

इस चेतावनी के बाद मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) के हौसले पस्त हो गए और रियासत को नुक़सान पहुँचाना उनके लिए आसान न रहा,

परन्तु यहूदियों की साज़िशें और जोड़तोड़ जारी रहीं। उनके ख़िलाफ़ क़दम उठाए गए, अन्ततः वे देश छोड़कर भागने पर विवश हो गए।

पारिवारिक-जीवन का हक़

इनसान को इसका हक़ है कि वह पारिवारिक-जीवन गुज़ारे। यह इसलिए कि परिवार उसकी एक स्वाभाविक एवं सामाजिक ज़रूरत है। सभ्य दुनिया इस हक़ को स्वीकार करती है। परिवार की बुनियाद वैवाहिक सम्बन्ध पर स्थापित है। इस्लाम ने इस सम्बन्ध को मानव के लिए सन्तोषप्रद जीवन का कारण एवं मानव जाति के विकास का जाइज़ तरीक़ा माना है और इससे जो रिश्ते और सम्बन्ध अस्तित्व में आते हैं उनके सम्मान का हुक्म दिया है।

> "ऐ लोगो! अपने रब से डरो जिसने तुम्हें एक जान से पैदा किया और उसी से उसका जोड़ा पैदा किया और उन दोनों से बहुत-से मर्द और औरतें फैला दीं। अल्लाह से डरो जिसके नाम से तुम एक-दूसरे से सवाल करते हो और सम्बन्ध-विच्छेद (ख़ून के रिश्ते को तोड़ने) से बचो। बेशक अल्लाह तुमपर निगराँ है।" (क़ुरआन 4:1)

इस्लाम परिवार को कोई नापसन्दीदा बोझ नहीं मानता जिसे उठाना इनसान को अच्छा न लगे। यह उसके निकट अल्लाह की नेमतों (उपकारों) में से एक बड़ी नेमत है। यही बात इस आयत में बयान हुई है—

> "अल्लाह ने तुम्हारे लिए तुम्हारी ही जाति से जोड़े पैदा किए और तुम्हारे जोड़ों से तुम्हें बेटे और पोते प्रदान किए और खाने के लिए पाक चीज़ें दीं, तो क्या फिर भी वे बातिल (असत्य) पर ईमान लाएँगे और अल्लाह के एहसान का इनकार करेंगे।" (क़ुरआन, 16:72)

इस्लाम ने परिवार का एक व्यापक तन्त्र प्रदान किया है। इसमें पति-पत्नी, माँ-बाप, औलाद और दूसरे अन्य रिश्तेदारों के अधिकार एवं कर्त्तव्य निर्धारित कर दिए गए हैं। इसके साथ इसमें छोटों से प्रेम और

बड़ों के साथ इज़्ज़त-सम्मान की शिक्षा पाई जाती है। इसने समाज के हर व्यक्ति को ताकीद की है कि इस व्यवस्था अथवा तन्त्र को बचाए रखने की पूरी कोशिश की जाए और इसे नुक़सान न पहुँचने दिया जाए।[1]

निजी जीवन में हस्तक्षेप नहीं

इनसान का यह हक़ स्वीकार किया गया है कि उसे अपनी निजी एवं व्यक्तिगत ज़िन्दगी में आज़ादी प्राप्त हो। उसमें बाहरी हस्तक्षेप न हो। इस्लाम ने इसे उसका एक जाइज़ हक़ क़रार दिया है और इस चीज़ पर ज़ोर डाला है कि कोई व्यक्ति अपने घर अथवा एकांत स्थान पर क्या कर रहा है, इसकी खोजबीन और टोह में न रहा जाए। यदि वह ग़लत काम भी कर रहा है तो यह उसका व्यक्तिगत मामला है। वह स्वयं अल्लाह के सामने जवाबदेह है। हाँ, यदि वह खुल्लम-खुल्ला घोषित रूप में जुर्म कर रहा हो अथवा उसका अमल किसी दूसरे व्यक्ति या समाज के लिए हानिकारक हो तो वह क़ानून की गिरफ़्त में ज़रूर आएगा। इस सन्दर्भ में इस्लाम ने उसूली हिदायत (सैद्धांतिक निर्देश) यह दी है कि किसी भी व्यक्ति को पहले ही क़दम पर मात्र अनुमान और अन्दाज़े के आधार पर दोषी या मुजरिम न क़रार दिया जाए और यह न समझा जाए कि वह दुष्कर्मी एवं दुराचारी है और उससे किसी भले की अपेक्षा नहीं है, बल्कि उसके प्रति सुधारणा रखी जाए, बदगुमानी और कुधारणा न पाली जाए। कारण यह कि कुछ गुमान (अनुमान/अन्दाज़े) निराधार होते हैं, इनके कारण इनसान गुनाहगार होता है।

दूसरी बात यह कही गई कि ऐब (त्रुटि) न तलाश किया जाए। किसी की कमज़ोरियों की टोह लगाना और चुपके-चुपके उसकी त्रुटियों को तलाश करते फिरना अनैतिक एवं अशोभनीय कृत्य है।

"ऐ ईमानवालो! बहुत गुमान से बचो, बेशक कुछ गुमान गुनाह होते हैं, और किसी के ऐब न तलाश करो और तुममें से कोई

---

1. इस विषय पर यहाँ बहुत ही संक्षेप में वार्ता की गई है। विस्तृत वार्ता के लिए लेखक की निम्न किताबें देखी जा सकती हैं—

(i) औरत इस्लामी समाज में

(ii) मुसलमान औरत के अधिकार और उनपर आक्षेपों का आंकलन

किसी की पीठ पीछे निन्दा न करे।" (क़ुरआन, 49:12)

कुधारणा और तजस्सुस (बुराई ढूँढने के लिए जिज्ञासु होना) इन दोनों का व्यक्तिगत एवं निजी ज़िन्दगी से बहुत गहरा सम्बन्ध है। यदि एक व्यक्ति सार्वजनिक एवं सामाजिक ज़िन्दगी में सदाचारी है तो उसके सम्बन्ध में अकारण इस बदगुमानी की ज़रूरत नहीं है कि वह अपनी निजी एवं गोपनीय ज़िन्दगी में अनिवार्यतः दुराचारी होगा और इससे आगे जाकर उसे अपराधी/दोषी साबित करने के लिए उसके गोपनीय मामलों की छानबीन करने की तो बिलकुल इजाज़त नहीं है।

एक सवाल यह पैदा होता है कि क्या किसी के सुधार को ध्यान में रखते हुए उसके निजी हालात की जानकारी लेने के लिए ख़ुफ़िया प्रयास करना भी ग़लत है? इसका जवाब यह है कि बुराई ढूँढने की जिज्ञासा से सुधार नहीं होता, बल्कि इससे बिगाड़ की ज़्यादा आशंका है। यदि एक व्यक्ति को यह मालूम हो जाए कि जिस जुर्म को वह दूसरों से छिपकर कर रहा था अब वह दूसरों पर खुल गया है तो उसकी शर्म एवं झिझक ख़त्म हो जाएगी और वह अपने दुराचरण पर ज़्यादा दृढ़ हो जाएगा। एक हदीस में इसी मनोवैज्ञानिक सच्चाई का चित्रण हुआ है। हज़रत मुआविया *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* का यह फ़रमान सुना है—

> "जब तुम लोगों के ख़ुफ़िया ऐबों के पीछे पड़ जाओगे तो उन्हें बिगाड़ में डाल दोगे।" (हदीस : मिश्कात)

यही बात रियासत के प्रधान (शासक) से भी कही गई है। हज़रत अबू-अमामा बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "बेशक अमीर (राज्याध्यक्ष) जब लोगों में ऐसी चीज़ें ढूँढने लगे जो शक-सन्देह में डालती है तो (वह) उन्हें बिगाड़ देगा।" (हदीस : मुस्नद अहमद)

इसका मतलब यह है कि यदि राज्य निजी ज़िन्दगी की छानबीन शुरू कर दे और आदमी के एकान्तवास की भी निगरानी होने लगे तो

उसका सुधार नहीं हो सकेगा। घर के अन्दर भी किसी को आज़ादी से वंचित कर दिया जाए और उसके पीछे जासूस लगा दिया जाए, जो एकान्त में भी उसका पीछा करता रहे, तो उसके अन्दर अनिवार्यतः इसकी प्रतिक्रिया पैदा होगी, और यदि वास्तव में वह दुराचारी है तो अब वह दुराचार की नई-नई राहें तलाश करने लगेगा।

अनुमति के बिना किसी के घर में प्रवेश निषेध

आदमी का घर उसकी तन्हाई एवं गोपनीयता (Privacy) की ख़ास जगह है। उसमें बे-पूछे घुस पड़ना उसकी एकान्तता में बाधा एवं हस्तक्षेप है। किसी के घर में दाख़िल होने का तरीक़ा यह बताया गया है कि आदमी दरवाज़े पर खड़े होकर सलाम करे और घर के लोगों से इजाज़त लेकर अन्दर जाए। यदि इजाज़त न मिले तो वापस हो जाए। इसपर बुरा नहीं मानना चाहिए। इस सन्दर्भ में क़ुरआन का मार्गदर्शन यह है—

> "ऐ ईमानवालो! अपने घरों के अलावा दूसरों के घरों में न दाख़िल हो जाओ, जब तक कि उनसे रज़ामन्दी हासिल न कर लो और (इसके लिए) उनमें रहनेवालों को सलाम न कर लो। यह तुम्हारे हक़ में बेहतर है। उम्मीद है तुम इसे याद रखोगे। फिर यदि तुम उन मकानों में किसी को मौजूद न पाओ तो उनमें दाख़िल न हो, जब तक कि तुम्हें इजाज़त न मिल जाए। यदि तुमसे वापस लौटने के लिए कहा जाए तो लौट जाओ। यह तुम्हारे हक़ में ज़्यादा बेहतर है, और जो कुछ तुम करते हो उसे अल्लाह जानता है।" (क़ुरआन, 24:27-28)

इस उचित तरीक़े को छोड़कर किसी के घर ताक-झाँक करना और अन्दरूनी हालात एवं स्थितियों का पता लगाने की कोशिश करना अत्यन्त निन्दनीय कृत्य है।

एक हदीस के अनुसार अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* एक मकान में मौजूद थे। एक व्यक्ति ने दरवाज़े के छिद्र से झाँक कर देखा। आप *(सल्ल.)* के हाथ में कंघी की तरह लोहे या लकड़ी की कोई चीज़ थी,

जिससे आप *(सल्ल.)* सरे-मुबारक खुजला रहे थे। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि यदि मैं समझता कि तुम मुझे देख रहे हो तो इसे मैं तुम्हारी आँख में मार देता। इजाज़त लेने का हुक्म निगाह ही के कारण तो है (बिना इजाज़त घर में झाँककर देख लेना ऐसा ही है जैसे आदमी बेइजाज़त घर में दाख़िल हो जाए)। (हदीस : बुख़ारी)

इस हदीस से मालूम होता है कि किसी के घर में ताक-झाँक करना कितना संगीन जुर्म है। इस्लाम की यह शिक्षा है कि क़रीबी रिश्तेदारों के घर में भी आदमी को इजाज़त लेकर ही दाख़िल होना चाहिए।

एक व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* से पूछा कि मैं अपनी माँ से भी (उसकी रिहाइशगाह में जाने के लिए) इजाज़त लूँ? आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "हाँ।" उसने कहा कि मैं तो उसी के साथ रहता हूँ। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "फिर भी इजाज़त लो।" उसने कहा, "मैं तो उसका ख़ादिम हूँ।" आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "इजाज़त लेकर ही उसके पास जाओ। क्या तुम यह पसन्द करोगे कि उसे निर्वस्त्र देखो।" उसने कहा, "नहीं।" आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "फिर तो तुम्हें इजाज़त लेनी चाहिए।" (अन्यथा किसी भी अप्रिय स्थिति से सामना हो सकता है।) (हदीस : मुवत्ता)

उपरोक्त वार्तालाप से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस्लाम ने एकान्तता और गोपनीयता (Privacy) को कितनी अहमियत दी है और समाज को इस हक़ का सम्मान करने के लिए कितना पाबन्द बनाया है।

देश एवं समाज सेवा का अधिकार

देश एवं समाज के कल्याण एवं विकास की चिन्ता और उसके लिए प्रयास करना राज्य या किसी व्यक्ति विशेष या समूह का ही उत्तरदायित्व नहीं है, बल्कि राज्य के हर नागरिक को हक़ हासिल है कि उसे देश और समाज की सेवा का अवसर प्राप्त हो और उसपर अनावश्यक पाबन्दी न लगाई जाए। इस्लाम ने शैक्षणिक, सामाजिक, नैतिक और राजनीतिक हर प्रकार की सेवा की प्रेरणा दी है और इसके लिए समाज को प्रतिबद्ध किया है। क़ुरआन ने इसकी बड़ाई इन शब्दों में की है—

"उनकी अकसर सरगोशियों (कानाफूसियों) में कोई भलाई नहीं है सिवाय उस व्यक्ति के जिसने सदक़े का हुक्म दिया या लोगों के बीच सुधार की कोशिश की (उसने भलाई का काम किया)।" (क़ुरआन, 4:114)

इस्लाम इल्म को आम करना चाहता है। मुसलमानों के बीच क़ुरआन और हदीस के इल्म को आम करने पर उसने ख़ासतौर से लोगों उभारा है।

हज़रत उसमान *(रज़ि.)* की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"तुममें बेहतरीन इनसान वह है जो क़ुरआन सीखे और दूसरों को सिखाए।" (हदीस : बुख़ारी)

आदमी का सेहतमन्द और तन्दुरुस्त होना और दूसरों की भलाई के लिए काम करना इस्लाम के निकट पसन्दीदा कर्म है। हज़रत अबू-हुरैरा *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"ताक़तवर मोमिन अल्लाह के नज़दीक बेहतर और ज़्यादा पसन्दीदा है उस मोमिन से जो कमज़ोर है, (इसके बावजूद) हर एक में भलाई है।" (हदीस : मुस्लिम)

सेवा-मार्ग में कष्ट सहने, सब्र एवं धैर्य के साथ अपने काम को जारी रखने और हिम्मत हारकर बैठ न रहने की प्रेरणा भी इस्लाम में दी गई है। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"जो मुसलमान लोगों से मेलजोल रखता है और उनकी तरफ़ से पहुँचनेवाली तकलीफ़ पर सब्र करता है, वह श्रेष्ठ है उस मुसलमान से जो न उनसे मेलजोल रखता है और न उनकी ओर से पहुँचनेवाली तकलीफ़ पर सब्र करता है।" (हदीस : मुस्नद अहमद)

व्यक्तियों एवं समूहों के विवाद निपटाना और उनके बीच सम्बन्धों को बहाल करना समाज की बेहतरीन सेवा है और बहुत बड़ा सवाब का काम भी। इसकी महानता नफ़्ल इबादतों (वे इबादतें जो अनिवार्य नहीं हैं) से ज़्यादा है। हज़रत अबू-दरदा *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"क्या मैं तुम्हें बताऊँ कि (नफ़्ल) रोज़ा, सदक़ा और नमाज़ से श्रेष्ठ अमल कौन-सा है।" कहा गया कि ज़रूर बयान फ़रमाइए। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "वह है आपस के ताल्लुक़ात (पारस्परिक सम्बन्ध) को ठीक करना, और आपस के ताल्लुक़ात का बिगाड़ तो (दीन व दुनिया को) मूँड देनेवाली चीज़ है।" (हदीस : मुस्नद अहमद)

प्रचार-प्रसार एवं उपदेश-नसीहत का हक़ भी हर एक को प्राप्त है। इसका सुबूत हज़रत उम्मे-हबीबा *(रज़ि.)* की रिवायत से मिलता है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"लोगों को भलाई का हुक्म देने और उन्हें बुराई से रोकने) या अल्लाह के ज़िक्र के सिवा इब्ने-आदम (मानव जाति) जो भी बात करता है वह उसके लिए नुक़सानदेह ही है, फ़ायदेमन्द नहीं है।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

इस प्रकार इस्लाम हर व्यक्ति को प्रेरणा देता है कि समाज की भलाई और इनसानों की सेवा के लिए अपनी कोशिश करे, इसके लिए सामर्थ्य, शक्ति, क्षमता एवं योग्यता पैदा करे और सेवा को पुण्य (सवाब) का काम समझ कर करे।

सुधार और आलोचना का हक़

अल्लाह के रसूल दुनिया में हक़ की तबलीग़ (सत्य का प्रचार) और समाज के सुधार का काम करते, और हर प्रकार के भय और ख़तरे से बेनियाज़ होकर करते—

"वे लोग जो अल्लाह के पैग़ाम पहुँचाते हैं और उससे डरते हैं और सिवाय अल्लाह के किसी से भय नहीं खाते। अल्लाह हिसाब लेने के लिए काफ़ी है।" (क़ुरआन, 33:39)

समाज में जो ख़राबियाँ पाई जाएँ उनके सुधार के लिए इस्लाम ने हर एक को आलोचना का हक़ दिया है। अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* का फ़रमान है—

"हक़ (सच्ची बात) कहो चाहे वह किसी को नागवार (अप्रिय) क्यों न गुज़रे।"

यह भी कहा—

"अल्लाह के (दीन के) मामले में किसी मलामतगर (बुरा-भला कहनेवाले) की मलामत (बुरा-भला कहने) की परवाह न करो।" (हदीस : मिश्कात)

बुराई की आलोचना और उन्हें ख़त्म करने की कोशिश को अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने ईमान का तक़ाज़ा (अपेक्षा) क़रार दिया है। फ़रमाया है—

"तुममें से जो व्यक्ति बुराई को देखे तो उसे अपने हाथ (शक्ति) से बदल दे। यदि इसकी क्षमता न हो तो अपनी ज़बान से उसे बदले। इसकी भी क्षमता न हो तो अपने दिल से बुरा समझे। यह ईमान का कमज़ोर दर्जा है।"

(हदीस : मुस्लिम)

हुकूमत और रियासत के फ़ैसलों के समर्थन अथवा आलोचना के मामले में इस्लाम ने यह उसूल बयान किया है कि उसका समर्थन सर्वमान्य भलाई के काम में किया जाएगा। रियासत अवांछित कामों और गुनाहों से बच रही है तो उसका साथ दिया जाएगा, परन्तु यदि वह मुनकरात (अर्थात सर्वमान्य बुराइयों) को बढ़ावा दे रही है तो उसके साथ सहयोग न होगा और उससे दूरी रखी जाएगी। हज़रत अली *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"गुनाह के कामों में आज्ञापालन नहीं होगा, आज्ञापालन तो भलाई के कामों में होता है।" (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर *(रज़ि.)* कहते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"मुस्लिम के लिए ज़रूरी है कि अपने अमीर (शासनाध्यक्ष) की बात सुने और उसका आज्ञापालन करे उस मामले में भी जिसे वह पसन्द करता है और उस मामले में भी जिसे वह नापसन्द करता है, जब तक कि उसे गुनाह के कामों का हुक्म न दिया जाए। जब गुनाह का हुक्म दिया जाए तो न उसकी बात सुनी जाएगी और न उसका पालन होगा।" (हदीस : बुख़ारी)

नवास-बिन-समआन *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया–

> "ख़ालिक़ (स्रष्टा) की अवज्ञा के मामले में किसी मख़लूक़ (अल्लाह की रचना/इनसान) की बात नहीं मानी जाएगी।"
>
> (हदीस : मिश्कात)

इस्लाम व्यक्ति को समाज में क्रियाशील एवं सक्रिय देखना चाहता है। इसके लिए उसने बेहतरीन मार्गदर्शक उसूल भी उपलब्ध करा दिए हैं। उनकी पाबन्दी हो तो समाज बुराई और फ़साद की काँटेदार झाड़ियों से पाक हो सकता है और अमन-शान्ति एवं भलाई-अच्छाई का बाग़ीचा बन सकता है।

कमज़ोर व्यक्तियों एवं वर्गों के अधिकार

समाज में शारीरिक, मानसिक, आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से कमज़ोर व्यक्ति और वर्ग पहले भी रहे हैं, आज भी हैं और दुनिया के हर क्षेत्र, हर देश में हैं। कमज़ोरों का इतिहास उनके अधिकारों के हनन का इतिहास रहा है। उन्होंने ज़ुल्म-अत्याचार के बीच ज़िन्दगी गुज़ारी है और बुनियादी अधिकारों तक से उन्हें वंचित रखा गया है। समाज के कमज़ोर व्यक्तियों एवं वर्गों पर जो ज़ुल्म ढाए जा रहे थे, इस्लाम ने शुरू ही से उनके ख़िलाफ़ ज़ोरदार आवाज़ उठाई, उनके अधिकारों का झंडा बुलन्द किया और उनके रक्षक की हैसियत से सामने आया। शक्तिशाली लोगों की ज़ुल्म की चक्की में ग़रीब, निर्धन, अनाथ और अपाहिज लोग पिस रहे थे, क़ुरआन ने दबंग, अत्याचारी और ज़ालिमों की घोर निन्दा की और उनके ज़ुल्म पर आख़िरत में दण्ड की चेतावनी दी। साथ ही कमज़ोर एवं वंचित लोगों के क़ानूनी अधिकार स्पष्ट किए और निर्धनता एवं ग़रीबी के कारण समाज में जिनका स्थान निम्न समझा जाता था उन्हें समानता का अधिकार प्रदान किया। यहाँ उनमें से कुछ अधिकारों का उल्लेख किया जा रहा है।

औरत के अधिकार

औरत के साथ हर ज़माने में ज़ुल्म होता रहा है। मर्द ने उसे बराबरी का दर्जा नहीं दिया, उसे निम्न समझा, उसके अधिकारों का हनन किया और उसके साथ अनैतिक बल्कि कभी-कभी तो अमानवीय व्यवहार किया। औरत अपनी फ़ितरी कमज़ोरी के क़ारण ये सब सहती रही और शायद कभी विरोध का साहस भी न जुटा सकी।

औरतों के साथ अरब समाज में अत्यन्त बुरा व्यवहार किया जाता था। लड़कियों को अपमान का कारण समझा जाता, कई बार उन्हें ज़िन्दा गाड़ दिया जाता, उनकी मौत को उनके जीवन से अच्छा समझा जाता, उनके वित्तीय अधिकार नहीं थे, विरासत (उत्तराधिकार) में उनका

कोई हिस्सा नहीं था। वे ज़िन्दा भी होतीं तो बोझ समझी जातीं, बोझ समझकर ही उनका पालन-पोषण होता था। इन परिस्थितियों के ख़िलाफ़ इस्लाम ने आवाज़ उठाई। समाज में उन्हें बराबरी का स्थान दिया और उनके ख़िलाफ़ हर प्रकार के शोषण को अपराध घोषित किया। जायदाद में उनका हक़ सुनिश्चित किया, वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का निर्धारण किया, समाज में उन्हें अपनी भूमिका निभाने के अवसर जुटाए। औरत को मर्द का दुमछल्ला समझने के बजाय उसकी स्वतन्त्र हैसियत का एलान किया और कहा कि दोनों ख़ुदा के बन्दे हैं और उसी के सामने जवाबदेह हैं। उनमें से जो सद्व्यवहार एवं सदाचरण का तोहफ़ा लेकर उसके समक्ष पहुँचेगा, वह कामियाब होगा और जो इससे वंचित होगा वह नाकाम व नामुराद होगा।

पत्नी के अधिकार

पति-पत्नी का सम्बन्ध इनसानों के बीच निकटतम सम्बन्ध है और ख़ानदान की बुनियाद है। इस्लाम ने इस सम्बन्ध का सम्मान करने और उसे मज़बूत बनाए रखने की हिदायत की है और पति से कहा है कि पत्नी की कोई बात नापसन्द हो तो उसे नज़रअन्दाज़ करे और उसके साथ भलाई का रवैया अपनाए। क़ुरआन की हिदायत है—

> "और भले तरीक़े से उनके साथ व्यवहार करो। यदि तुम उन्हें नापसन्द करते हो तो यह हो सकता है कि एक चीज़ तुम्हें नापसन्द हो और अल्लाह ने उसमें बहुत-सी भलाई रखी हो।" (क़ुरआन, 4:19)

अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* ने औरतों के साथ अच्छे व्यवहार की बार-बार ताकीद फ़रमाई है। हज़रत मुआविया क़ुशीरी *(रज़ि.)* ने नबी *(सल्ल.)* से पत्नी के अधिकारों के बारे में पूछा तो फ़रमाया—

> "जब तुम खाओ तो उसे भी खिलाओ और जब तुम पहनो तो उसे भी पहनाओ। (ग़ुस्से से बे-क़ाबू होकर) उसके मुँह पर मत मारो।) उसे बुरा-भला मत कहो, (उससे किनाराकशी करनी हो तो घर से मत निकाल दो बल्कि) घर ही के अन्दर उससे अलग रहो।" (हदीस : अबू-दाऊद)

यही रिवायत इस तरह भी आई है—

"तुम जो खाओ वही उन्हें खिलाओ। जो पहनो वही उन्हें पहनाओ, उनके साथ मारपीट मत करो और उन्हें बुरा-भला मत कहो।" (हदीस : अबू-दाऊद)

इससे दो बातें मालूम हुईं। एक यह कि खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने में मर्द का जो स्तर है वही उसकी पत्नी का भी होना चाहिए। स्वयं उच्च स्तर की ज़िन्दगी गुज़ारना और पत्नी को निम्न स्तर की ज़िन्दगी गुज़ारने पर मजबूर करना सही नहीं है। दूसरे यह कि उसके साथ मेलजोल और सम्बन्धों में शालीनता का व्यवहार करना चाहिए। असभ्य एवं अज्ञानपूर्ण व्यवहार का प्रदर्शन नहीं होना चाहिए।

हज़रत अबू-हुरैरा *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"ईमानवालों में सबसे ज़्यादा पूर्ण ईमान उस व्यक्ति का है जिसके अख़लाक़ (आचरण) सबसे अच्छे हों। तुममें बेहतर वे हैं जो अपनी औरतों के प्रति बेहतर हों।"

(हदीस : तिर्मिज़ी)

मतलब यह कि अख़लाक़ की बुलन्दी ही से ईमान का उच्च स्थान प्राप्त होता है, जो व्यक्ति अपने घरवालों के साथ बेहतर सुलूक करे वह समाज का बेहतरीन व्यक्ति है।

विधवा के साथ सद्व्यवहार और उसके अधिकार

औरत पर उसके पति ने भी ज़ुल्म-ज़्यादती की है, परन्तु इसके बावजूद पत्नी के लिए बहरहाल उसके दिल में नर्मी की भावना रही है। मियाँ-बीवी के बीच अति भावनात्मक सम्बन्ध होता है। इसी कारण उनकी उल्फ़त व मुहब्बत भी बेमिसाल समझी गई है। उनके हित भी एक-दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। औरत उसके बच्चों की माँ और उसके घर की प्रबन्धक होती है और मर्द उसकी जान, माल और इज़्ज़त का रखवाला होता है। इसी कारण औरत भावनात्मक रूप से सबसे ज़्यादा अपने पति से निकटता महसूस करती है और ज़िन्दगी की भाग-दौड़ में

उसके साथ को सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण समझती है। औरत की हैसियत वैसे भी कमज़ोर रही है और जब उसका यह (पति का) सहारा ख़त्म हो जाता है तो वह और ज़्यादा असहाय हो जाती है। वह अपनी सुरक्षा एवं देखभाल करनेवाले से वंचित होकर हर तरफ़ से ज़ुल्म-सितम का निशाना बन जाती है।

औरत यदि विधवा होती है तो ख़ुदा की क़ुदरत और हिक्मत (इच्छा एवं तत्त्वदर्शिता) के तहत होती है। इसमें उसका कोई क़ुसूर (दोष) नहीं होता, परन्तु दुनिया की अधिकतर क़ौमों के नज़दीक औरत के लिए वैधव्य (विधवापन) बहुत बड़ा दाग़ है। उसे अभागिन एवं दुर्भाग्यशाली समझा जाता है। हेय एवं तुच्छ दृष्टि से उसे देखा जाता है। समाज में उसका कोई मान-सम्मान बाक़ी नहीं रहता और उसकी इज़्ज़त-आबरू ख़तरे में पड़ जाती है। उसके अन्दर अपनी महरूमी और बदनसीबी की इतनी तीव्र भावना पैदा हो जाती है कि कभी-कभी वह आत्महत्या के लिए विवश हो जाती है, और जीवित भी रहती तो इस तरह कि मौत ही उस जीवन से अच्छी होती। आज भी अनेक समाजों और वर्गों में विधवा की यही स्थिति है। इस पहलू से वैधव्य औरत के लिए एक सामाजिक एवं मानसिक हादसा है। जिस औरत के साथ यह हादसा पेश आए, इस्लाम की शिक्षा यह है कि वह हमारे सद्व्यवहार की सबसे ज़्यादा हक़दार है। अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* ने विधवाओं और ग़रीबों की सेवा तथा सहयोग और इस सिलसिले में भागदौड़ को अल्लाह की राह में जिहाद और रात-दिन की नफ़्ल इबादत के बराबर क़रार दिया है। हज़रत अबू-हुरैरा *(रज़ि.)* की रिवायत है कि नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "विधवा और मिस्कीन (असहाय/ग़रीब) के सिलसिले में दौड़-धूप करनेवाला उस व्यक्ति के जैसा है जो ख़ुदा की राह में दौड़धूप करता है। रावी (हदीस बयान करनेवाले सहाबी) कहते हैं कि मेरा ख़्याल है कि आप *(सल्ल.)* ने यह भी फ़रमाया कि वह उस व्यक्ति की तरह है जो लगातार ख़ुदा की याद में खड़ा रहता है और लगातार रोज़े रखता है।" (हदीस : बुख़ारी)

इस्लामी क़ानून के अनुसार औरत विधवा होने के कारण अपने क़ानूनी हक़ से वंचित नहीं होती। पति की विरासत में उसका हिस्सा निर्धारित है। यदि उसकी आय का कोई साधन नहीं है तो पति के बाद उसके भरण-पोषण की ज़िम्मेदारी उसकी औलाद या माँ-बाप पर है। सबसे बड़ी बात तो यह कि विधवा होने के बाद उसे अपनी इच्छा से पुनर्विवाह का अधिकार प्राप्त है। वह अपनी स्वतन्त्र इच्छा से पुनः वैवाहिक जीवन आरम्भ कर सकती है। इस्लामी समाज में विधवा से निकाह की परम्परा रही है। यह उसकी अनगिनत समस्याओं का समाधान है।

यतीमों (अनाथों) के साथ सद्व्यवहार और उनके अधिकार

पारिभाषिक रूप से यतीम उस नाबालिग़ बच्चे को कहा जाता है जिसके सिर से बाप का साया उठ गया हो, परन्तु जिस बच्चे की माँ न हो उसे भी शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से यतीम कहा जा सकता है। किसी भी बच्चे के लिए यतीमी सबसे बड़ा हादसा है। माँ-बाप के न होने के कारण वह अपने निकटतम हितैषी और वास्तविक संरक्षक से वंचित होता है। वह शिक्षा और रोज़गार ही के लिए नहीं बल्कि कभी-कभी अपनी देखभाल और लालन-पालन के लिए भी दूसरों का मोहताज होता है। उसे अपनी औलाद की तरह देखना, उसकी परवरिश करना, उसकी शिक्षा का बोझ उठाना और उसे इस योग्य बनाना कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सके, आसान नहीं है। परन्तु जो व्यक्ति यह मुश्किल काम करने का बीड़ा उठाए, उसे आख़िरत में ख़ुदा के रसूल हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* की निकटता एवं सामीप्य प्राप्त होने की ख़ुशख़बरी सुनाई गई है। हज़रत सहल-बिन-सअ्द *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "मैं और यतीम की परवरिश करनेवाला जन्नत में इस प्रकार क़रीब होंगे। यह कहकर आप *(सल्ल.)* ने शहादत और दरमियानी उँगली (अँगूठे के बाद वाली एवं बीचवाली उँगली) से इशारा फ़रमाया।" (हदीस : बुख़ारी)

रिश्तेदारों का हक़ प्रधान है और उसकी सेवा का सवाब ज़्यादा है, परन्तु यदि यतीम से रिश्तेदारी न हो तो भी उसकी निगरानी और परवरिश पर वही सवाब मिलेगा जो किसी रिश्तेदार यतीम की परवरिश पर मिलता है। उसे भी अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने क़ियामत में अपने सामीप्य की ख़ुशख़बरी दी है। अतः उपरोक्त हदीस इन शब्दों के साथ भी उद्धृत की गई है—

> "यतीम की परवरिश करनेवाला चाहे वह उसका हो या किसी दूसरे का, वह और मैं जन्नत में इस तरह क़रीब होंगे (जैसे ये दो उँगलियाँ)।" (हदीस : मुस्लिम)

इमाम नव्वी *(रह.)* फ़रमाते हैं, यतीम की कफ़ालत का मतलब है उसके खाने-कपड़े और शिक्षा-दीक्षा आदि की व्यवस्था करना। यह फ़ज़ीलत (लाभ) उस व्यक्ति को भी हासिल होगी जो अपने पैसे से यह ख़िदमत अंजाम दे और उस व्यक्ति को भी जो यतीम ही का माल शरीअत के दिए हुए अधिकारों के अनुरूप उन मदों में ख़र्च करे।

मालिक-बिन-अलहारिस *(रज़ि.)* फ़रमाते हैं कि उन्होंने अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* का यह फ़रमान सुना है—

> "जो व्यक्ति किसी यतीम को, जो मुसलमान माँ-बाप से हो, अपने खाने-पीने में उस वक़्त तक साथ रखे जब तक कि वह (बड़ा होकर) उससे बेनियाज़ (निस्पृह) हो जाए, तो उसके लिए जन्नत वाजिब (अनिवार्य) होगी।"
>
> (हदीस : मुस्नद अहमद)

इसी सन्दर्भ में एक और हदीस हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास *(रज़ि.)* से उद्धृत है, अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "जो व्यक्ति तीन यतीमों की परवरिश करे वह उस व्यक्ति की तरह है जिसने रात में क़ियाम किया (नमाज़ में खड़ा रहा), दिन में रोज़े रखे और सुबह-शाम अपनी तलवार लिए हुए ख़ुदा की राह में जिहाद करता रहा। मैं और वह जन्नत में इस तरह क़रीब होंगे जैसे ये दो उँगलियाँ हैं। यह कहकर आपने शहादत और बीच की उँगली मिलाई।" (हदीस : इब्ने-माजा)

औरत और यतीम के साथ किसी प्रकार के दुर्व्यवहार, शोषण और उनके अधिकार हनन से अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने इस प्रकार मना फ़रमाया है—

> "ऐ अल्लाह, जो व्यक्ति इन दो कमज़ोरों— यतीम और औरत— का हक़ बर्बाद करे मैं उसे ख़ताकार और मुजरिम ठहराता हूँ (और इससे बचने की उसे ताकीद करता हूँ)।" (हदीस : मुस्नद अहमद)

हज़रत अबू-हुरैरा *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "मुसलमानों के घरों में बेहतरीन घर वह है जिसमें किसी यतीम के साथ अच्छा व्यवहार किया जाए और मुसलमानों के घरों में बदतरीन घर वह है जिसमें किसी यतीम के साथ बुरा व्यवहार किया जाए।" (हदीस : नसई)

छोटी उम्र के यतीम नासमझ और नातजरिबाकार होते हैं। उन्हें अपने फ़ायदे-नुक़सान का पूरी तरह एहसास नहीं होता। इसलिए आसानी से उनका हक़ मारा जा सकता है और उन्हें नुक़सान पहुँचाया जा सकता है। इस्लाम ने कठोरतापूर्वक इस प्रवृत्ति से रोका है। उसने कहा कि यतीम हैसियतवाला हो तो उसके माल-जायदाद की हिफ़ाज़त की जाए, उसे तरक़्क़ी देने की कोशिश की जाए और उससे किसी प्रकार का नाजाइज़ फ़ायदा न उठाया जाए। उसके माल को इस्तेमाल करना हो तो भले तरीक़े से किया जाए, उसके माल को बर्बाद न किया जाए। अतः क़ुरआन में है—

> "यतीम के माल के क़रीब न जाओ, मगर उस तरीक़े से जो बेहतरीन हो, यहाँ तक कि वह अपनी जवानी को पहुँच जाए।" (क़ुरआन, 6:152)

जो लोग यतीम का माल हड़पते हैं उन्हें क़ुरआन ने इन शब्दों में जहन्नम का भय दिलाया है—

> "बेशक वे लोग जो यतीमों के माल खाते हैं वे अपने पेट आग से भरते हैं, और वे ज़रूर जहन्नम की भड़कती हुई आग में दाख़िल होंगे।" (क़ुरआन, 4:10)

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने सात प्रकार के गुनाहों को 'मूबिक़ात' शब्द (हलाक कर देनेवाले गुनाह) से याद किया है, इनमें एक यतीम का माल खाना भी है।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास *(रज़ि.)* फ़रमाते हैं कि इन शिक्षाओं का प्रभाव यह हुआ कि यतीमों के सरपरस्तों ने उनके खाने-पीने तक की व्यवस्था अलग कर दी। कारण यह कि अपने परिवार के साथ सम्मिलित व्यवस्था में इस बात का डर था कि अत्यन्त सावधानी के बावजूद यतीम की कोई चीज़ और उसके माल का कोई हिस्सा उनके इस्तेमाल में न आ जाए और वे भी यतीम का माल खानेवाले दोषियों में सम्मिलित न हो जाएँ। यह सावधानी इतनी बढ़ गई कि उसका खाना बच जाता तो हिफ़ाज़त से रख दिया जाता ताकि वह ख़ुद ही दोबारा उसका उपयोग करे। कभी-कभी वह ख़राब भी हो जाता, परन्तु यतीम के सरपरस्त उसे अपने लिए जाइज़ नहीं समझते थे। इससे घर की व्यवस्था चलाने में अत्यन्त कठिनाई हो रही थी। फिर जब यह आयत नाज़िल (अवतरित) हुई तो उन्होंने पुनः अपनी और उनकी संयुक्त-व्यवस्था अपना ली—

> "वे तुमसे यतीमों के बारे नें पूछते हैं (कि उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाए)? कहो जिसमें उनकी भलाई है वह बेहतर है। यदि तुम उन्हें खाने-पीने और रहने-सहने में अपने साथ मिलाकर रखो तो (भी कोई आपत्ति नहीं क्योंकि) वे तुम्हारे भाई हैं। अल्लाह जानता है कौन बिगाड़नेवाला है और कौन बनाने-सँवारनेवाला है। अल्लाह चाहता तो तुम्हें मशक़्क़त (कठिनाई) में डाल देता। वह ग़ालिब (प्रभुत्वशाली) और हिक़मतवाला (तत्त्वदर्शी) है।" (क़ुरआन, 2:220)

इसमें जिस बात पर ज़ोर दिया गया है वह यह है कि यतीम के माल के साथ वह रवैया अपनाया जाए जो उसके हक़ में लाभदायक हो। जैसा कि फ़ुक़हा (इस्लामी विधि विशेषज्ञों) ने लिखा है, इसकी बहुत-सी सूरतें हो सकती हैं। उसका माल किसी उचित कारोबार मे लगाया जाए। श्रम एवं पूँजी की भागीदारी के उसूल पर किसी मेहनती एवं अनुभवी आदमी के हवाले किया जाए। सरपरस्त को इसकी भी इजाज़त है कि

वह स्वयं ही यतीम के माल से व्यापार करे या किसी दूसरे के व्यापार में उसकी पूँजी लगाई जाए। यतीम के साथ सद्भावना का एक पहलू यह भी है कि उसकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की जाए या उसे किसी हुनर और तकनीकी प्रशिक्षण में लगाया जाए। कभी-कभी उसके साथ भलाई और हित साधन का यह भी एक पहलू हो सकता है कि उसका कोई उचित रिश्ता करा दिया जाए। आयत के आख़िर में फ़रमाया गया कि वे तुम्हारे भाई हैं। मतलब यह कि तुम्हें उनके साथ वह मामला करना चाहिए जो तुम अपने भाई के साथ कर सकते हो।

एक जगह यतीमों के सरपरस्तों से क़ुरआन ने कहा कि तुम उनके माल के रक्षक हो, तुम्हारा काम उसकी रक्षा और देखभाल करना है। जब वे सूझ-बूझवाले हो जाएँ तो उनका माल उनके हवाले कर दो, उनके व्यस्क होने से पहले उनका माल ख़त्म न कर दो। ख़ुदा ने तुम्हें धनी एवं समर्थ्यवान बनाया है तो बेहतर यह है कि किसी मुआवज़े के बग़ैर उनकी सेवा करो, परन्तु यदि तुम निर्धन और ज़रूरतमन्द हो तो सामान्य तरीक़े से अपनी सेवा का बदला मुआवज़े के रूप में ले सकते हो, उनका माल बेदर्दी से उड़ा नहीं सकते।

> "यतीमों को आज़माकर देखो, यहाँ तक कि वे निकाह की उम्र को पहुँच जाएँ। फिर जब तुम उनके अन्दर होशियारी और सूझबूझ देखो तो उनका माल उनके हवाले कर दो। यतीमों का माल ज़रूरत से ज़्यादा और जल्दी-जल्दी (इस ख़्याल से) मत खा जाओ कि वे बड़े होकर उसकी माँग करेंगे। जो हैसियतवाला है वह इससे बचा रहे और जो ज़रूरतमन्द है वह सामान्य प्रचलन के तरीक़े से खाए।" (क़ुरआन, 4:6)

एक व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* से अर्ज़ किया कि मैं बिल्कुल ग़रीब और निर्धन हूँ। मेरे पास कुछ नहीं है, अलबत्ता एक यतीम की देखभाल करता हूँ, क्या उसके माल से फ़ायदा उठा सकता हूँ? आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "यतीम के माल से तुम खा सकते हो, परन्तु न तो ज़रूरत से ज़्यादा और न जल्दी-जल्दी और न इस प्रकार कि उसकी मूल ही ख़त्म हो जाए।" (हदीस : अबू-दाऊद)

ग़ुलामों और अधीनस्थों के साथ सद्व्यवहार और उनके अधिकार

दुनिया में प्राचीनकाल से ग़ुलामी की परम्परा रही है, और जब से इसकी परम्परा है ग़ुलामों के साथ ज़ुल्म-ज़्यादती भी होती रही है। ग़ुलामों को न तो जिद्दोजुहद और भाग-दौड़ की आज़ादी थी और न किसी चीज़ पर उनका मालिकाना हक़ स्वीकार किया जाता था। उनकी जान-माल, उनकी क्षमताओं, योग्यताओं और उनके समयों पर मालिक का पूरा नियन्त्रण होता था। वह जिस प्रकार चाहता उनके साथ मामला करता। कभी-कभी तो उनके साथ ऐसा व्यवहार किया जाता जो जानवरों के साथ भी किया जाना पसन्द नहीं किया जाता। फिर यह भी कि इस ज़ुल्म-ज़्यादती पर उन्हें कहीं शिकायत-फ़रियाद की इजाज़त नहीं थी। इसी प्रकार बादशाहों ने प्रजा के साथ, हाकिमों ने अपने अधीनस्थ लोगों के साथ, अमीरों और रईसों ने नौकरों एवं सेवकों के साथ, शक्तिशाली लोगों ने कमज़ोरों के साथ हर प्रकार की ज़ुल्म-ज़्यादती की और उनके जाइज़ अधिकारों को भी मानने से इनकार कर दिया। इस्लाम ने इसके ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द की। हर प्रकार के अधीनस्थ और दबे-कुचले लोगों के अधिकार निर्धारित किए और उनके साथ सद्व्यवहार की शिक्षा दी।

हज़रत अबू-ज़र *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "निस्सन्देह तुम्हारे भाई तुम्हारे ग़ुलाम हैं। अल्लाह ने उन्हें तुम्हारे अधीन कर रखा है। अतः जिस किसी का भाई उसके मातहत हो तो उसे वही खिलाए जो ख़ुद खाता है और वही पहनाए जो ख़ुद पहनता है। उनपर काम का इतना बोझ न डालो कि उसे वे उठा न सकें। यदि उनकी ताक़त से ज़्यादा उन्हें काम दो तो उसके पूरा करने में उनकी मदद करो।" (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत अबू-हुरैरा *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "ग़ुलाम का हक़ है कि उसे खाना और लिबास दिया जाए और उसपर ताक़त से ज़्यादा बोझ न डाला जाए।"
>
> (हदीस : मुस्लिम)

हज़रत अबू-ज़र *(रज़ि.)* की रिवायत के सन्दर्भ में इमाम नव्वी *(रह.)* फ़रमाते हैं कि उलमा का इसपर मतैक्य है कि मालिक जो खाए और जो पहने वही ग़ुलाम को खिलाना और पहनाना फ़र्ज़ तो नहीं अलबत्ता पसन्दीदा है। फ़र्ज़ यह है कि शहरों और इलाक़ों का और व्यक्तियों का जो भी दस्तूर (आम प्रचलन) हो उसके अनुसार उसे खाना-कपड़ा दिया जाए और उसकी दूसरी ज़रूरतें पूरी की जाएँ, चाहे यह वही खाना कपड़ा हो जो मालिक इस्तेमाल करता है या उससे अधिक अथवा कम हो। यदि मालिक अपनी परहेज़गारी के कारण कंजूसी की वजह से साधारण ज़िन्दगी गुज़ार रहा हो तो वह ग़ुलाम को उसकी इच्छा के बिना उसी प्रकार की ज़िन्दगी गुज़ारने पर मजबूर नहीं कर सकता। उलमा इसपर भी एकमत हैं कि ग़ुलाम की ताक़त से ज़्यादा उसपर काम का बोझ नहीं डाला जा सकता। इस प्रकार का बोझ मालिक उसपर डाले तो उसे स्वयं अथवा किसी अन्य के द्वारा उसकी मदद अनिवार्य रूप से करनी होगी।

हदीस में है कि ग़ुलाम के साथ अमान्य ज़्यादती हो तो उसे आज़ाद कर दिया जाए।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर *(रज़ि.)* ने अपने ग़ुलाम को मारा तो उसकी पीठ पर इसका निशान पड़ गया। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर *(रज़ि.)* ने देखा तो कहा, मैंने सम्भवतः तुम्हें तकलीफ़ पहुँचाई है? उसने कहा, नहीं। उन्होंने फ़रमाया, जाओ तुम आज़ाद हो। फिर ज़मीन से कोई तिनका उठाया और कहा, इसके बराबर भी इसका अज्र (सवाब) नहीं है, इसलिए कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया है—

> "जो ग़ुलाम को मुँह पर थप्पड़ या किसी और जगह मारे तो उसका कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) यह है कि उसे आज़ाद कर दे।"
>
> (हदीस : मुस्लिम)

सुवैद-बिन-मक़रन *(रज़ि.)* कहते हैं। हमारी एक लौंडी (सेविका) थी जिसे हमारे एक आदमी ने ग़ुस्से में थप्पड़ मार दिया। अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* को इसकी सूचना मिली तो फ़रमाया कि उसे आज़ाद कर दो। हमने अर्ज़ किया कि हमारे पास दूसरी सेविका नहीं है। आपने फ़रमाया, जब उसकी ज़रूरत न रहे (या कोई दूसरा इंतिज़ाम हो जाए) तो उसे आज़ाद कर दो। (हदीस : मुस्लिम)

हज़रत अबू-मसऊद अनसारी *(रज़ि.)* कहते हैं कि मैं अपने ग़ुलाम को कोड़े से मार रहा था। पीछे से किसी की आवाज़ सुनी, "अबू-मसऊद! ख़ूब समझ लो कि अल्लाह तुमपर इससे ज़्यादा क़ुदरत रखता है जितनी तुम्हें इसपर प्राप्त है।" पलटकर देखा तो अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* मौजूद थे। मैंने कोड़ा ज़मीन पर डाल दिया और कहा कि इसके बाद किसी ग़ुलाम को कभी नहीं मारूँगा और यह ग़ुलाम आज से आज़ाद है। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि यदि तुम इसे आज़ाद न करते तो जहन्नम की आग तुम्हें छू जाती। (हदीस : मुस्लिम)

हदीस में ग़ुलाम पर झूठा इलज़ाम लगाने और उसे बदनाम करने पर कठोर दण्ड की चेतावनी सुनाई गई है। हज़रत अबू-हुरैरा *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "जो अपने ग़ुलाम पर (बलात्कार की) तोहमत लगाए और जो बात कही गई है वह उससे बरी है (बेगुनाह है) तो क़ियामत के दिन उसे कोड़े लगाए जाएँगे सिवाय इसके कि वह वैसा ही हो जैसा कहा गया है।" (हदीस : बुख़ारी)

इमाम नव्वी *(रह.)* फ़रमाते हैं कि इससे यह दलील मिलती है कि ग़ुलाम पर तोहमत लगाने से तोहमत की हद तो जारी नहीं होगी, अलबत्ता उसकी ताज़ीर (दण्ड, जो हुकूमत तय करे) होगी।

ग़ुलामी की प्रथा का सम्बन्ध जंगी-क़ैदियों से है। वर्तमान में सम्भव है कि यह समस्या न उभरे। इस बहस से परे कि इस्लाम ने ग़ुलामी को बिल्कुल ख़त्म कर दिया या उसे सियासी हालात पर छोड़ दिया, यह एक हक़ीक़त है कि उसने ग़ुलामों को आज़ाद करने को प्रेरित किया, लिखित समझौते का तरीक़ा राइज किया (क़ुरआन, 24:33), जिसमें ग़ुलाम और

उसके मालिक के बीच यह सहमति होती है कि ग़ुलाम निर्धारित राशि चुकाकर आज़ादी हासिल कर लेगा। आदमी को यह हक़ भी है कि वह अपनी जीवन-अवधि के बाद ग़ुलाम को आज़ाद घोषित कर दे। कतिपय गुनाहों और ग़लतियों के कफ़्फ़ारे (प्रायश्चित) में यह भी शामिल किया गया कि ग़ुलाम को आज़ाद किया जाए। जैसे, ग़लती से किसी मुसलमान को क़त्ल करना (क़ुरआन, 4:92), क़सम तोड़ना (क़ुरआन, 5:89) अथवा बीवी को माँ क़रार देकर उससे पुनः बीवी जैसा सम्बन्ध बनाना (क़ुरआन, 58:3)। इन सब उपायों के बावजूद यदि ग़ुलाम हो तो उसके साथ अच्छे व्यवहार की शिक्षा दी, उसपर असहनीय बोझ डालने से रोका, उसके अधिकार सुनिश्चित किए और उसके कर्त्तव्यों को स्पष्ट किया।

उपरोक्त हदीसों का सम्बन्ध मूलतः ग़ुलामों से है, परन्तु उनकी रौशनी में सेवकों, मज़दूरों एवं अधीनस्थ लोगों के सिलसिले में निम्नलिखित उसूल निकाले जा सकते हैं—

1. सेवक/नौकर की तनख़्वाह इतनी ज़रूर हो जिससे उसकी बुनियादी ज़रूरतें पूरी हो सकें।
2. मालिक को यह हक़ नहीं कि नौकर को मारे-पीटे या उसे शारीरिक सज़ा दे, यदि उससे यह ग़लती हो जाए तो उसपर हर्जाना लगाया जाएगा।
3. मालिक को इसका अधिकार न होगा कि नौकर पर झूठे इल्ज़ाम लगाकर उसे बदनाम करे या उसकी नौकरी ख़त्म कर दे।

ज़रूरतमन्दों और ग़रीबों के साथ सद्व्यवहार और उनके अधिकार

क़ुरआन ने बार-बार मिस्कीनों और ज़रूरतमन्दों की मदद पर उभारा है और उनसे उदासीनता तथा उनके साथ ज़ुल्म-ज़्यादती से मना किया है। (क़ुरआन, 90:16) वह जब सद्व्यवहार का उल्लेख करता है तो माता-पिता एवं सगे-सम्बन्धियों के साथ प्रायः मिस्कीनों (ग़रीबों) का भी

ज़िक्र करता है (क़ुरआन, 4:36; 17:26)। एक जगह फ़रमाया—

"जब विरासत का माल बाँटा जाए तो जिन रिश्तेदारों का उसमें हक़ नहीं है उनका और अनाथों और मुहताजों का ख़याल रखा जाए।" (क़ुरआन, 4:8)

जो लोग ग़रीबों और ज़रूरतमन्दों की भूख-प्यास तथा उनकी दयनीय स्थिति का ख़्याल नहीं करते और उनके साथ सहयोग और हमदर्दी का रवैया नहीं अपनाते उनकी घोर निन्दा करते हुए जहन्नम के दण्ड की चेतावनी दी है। (क़ुरआन 69:34; 89:14 और 107:3)

हदीसों में भी विभिन्न पहलुओं से ज़रूरतमन्दों और ग़रीबों के साथ सद्व्यवहार के लिए प्रेरित किया गया है। हज़रत अनस *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"जो व्यक्ति किसी मुसीबत के मारे की फ़रियाद पूरी करेगा, अल्लाह उसके आमाल-नामे (कर्मपत्र) में तिहत्तर मग़फ़िरतें (गुनाहों से माफ़ी) लिखेगा। उनमें से एक (का नतीजा यह होगा) कि उसके सारे काम दुरुस्त हो जाएँगे, बाक़ी बहत्तर क़ियामत के दिन उसके दर्जे (श्रेणी) की बढ़ोत्तरी का कारण बनेंगे।" (हदीस : मिश्कात)

हज़रत अबू-हुरैरा *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि एक व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* से अपनी संगदिली की शिकायत की और इलाज पूछा तो आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"ग़रीब को खाना खिलाओ और यतीम (अनाथ) के सिर पर हाथ फेरो (संगदिली जाती रहेगी)।" (हदीस : मुस्नद अहमद)

हदीस में ग़रीबों और मिस्कीनों से मुहब्बत का भी हुक्म दिया गया है, इसलिए कि मुहब्बत के बग़ैर ख़िदमत नहीं हो सकती। जो व्यक्ति उनके साथ मुहब्बत करे वही उनके साथ अच्छा व्यवहार भी कर सकता है। हज़रत अबू-ज़र *(रज़ि.)* फ़रमाते हैं—

"मेरे महबूब, अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)*, ने मुझे सात बातों की हिदायत फ़रमाई। (उनमें से एक यह थी कि) आप *(सल्ल.)* ने

मुझे हुक्म दिया कि मैं ग़रीबों से मुहब्बत करूँ और उनका सामीप्य प्राप्त करूँ।" (हदीस : मिश्कात)

स्वयं अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* को भी ग़रीबों से जो मुहब्बत और हमदर्दी थी और जो अपनापन उनसे आप *(सल्ल.)* महसूस फ़रमाते थे,उसका इज़हार आपकी इस दुआ से होता है। आप *(सल्ल.)* ने दुआ फ़रमाई—

"ऐ अल्लाह, मुझे मिस्कीन ज़िन्दा रख, मिस्कीनी ही की हालत में मौत दे और मिस्कीनों के समूह में उठा।"

हज़रत आइशा *(रज़ि.)* ने इस दुआ का कारण पूछा तो आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, ग़रीब दौलतमन्दों से चालीस वर्ष पहले जन्नत में पहुँचेंगे। फिर आप *(सल्ल.)* ने यह नसीहत फ़रमाई—

"ऐ आइशा! मिस्कीनों से मुहब्बत करो और उन्हें अपने क़रीब लाओ, अल्लाह तुम्हें क़ियामत के दिन अपने से क़रीब करेगा।" (हदीस : मिश्कात)

इस्लाम ने इन नैतिक शिक्षाओं के साथ ग़रीबों की भलाई एवं कल्याण हेतु विभिन्न उपायों एवं अवसरों की व्यवस्था भी रखी है—

1. कुछ इबादतों में त्रुटि या कमी की क्षतिपूर्ति के लिए फ़िदया रखा गया है। फ़िदया का एक तरीक़ा निर्धारित संख्या में ग़रीबों को खाना खिलाना है। इसी प्रकार कुछ ग़लतियों और गुनाहों का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) भी ग़रीबों को खाना खिलाना है।
2. माले-ग़नीमत (युद्ध में प्राप्त धन) में ग़रीबों और ज़रूरतमन्दों का हिस्सा रखा गया है। (क़ुरआन, 8:41)
3. ज़कात की रक़म जिन मदों पर ख़र्च करने का हुक्म है उनमें सबसे पहली मद निर्धनों और मिस्कीनों की है। (क़ुरआन, 9:60)

निर्धनों और मिस्कीनों को आर्थिक दृष्टि से ऊपर उठाने के लिए वैध तरीक़े से व्यक्ति जो कोशिश करे और राज्य जो भी क़दम उठाए, वे सब इस्लामी शिक्षा और उसकी आत्मा के अनुकूल होंगे।

ज़ईफ़ों (कमज़ोरों/वृद्धों) के साथ सद्व्यवहार और उनके अधिकार

जो व्यक्ति शारीरिक रूप से कमज़ोर होता है वह आर्थिक दौड़-धूप में प्रायः पीछे रह जाता है और दूसरों का मोहताज होता है। कोई भी व्यक्ति ख़ुशी से उसकी सेवा नहीं करता है बल्कि उसे एक प्रकार का बोझ समझता है। हदीसों में इस मानसिकता को बदलने की शिक्षा दी गई है और कहा गया है कि तुम्हें यहाँ जो कुछ मिलता है वह उन्हीं कमज़ोरों और असहाय लोगों के चलते मिलता है, इसलिए उनपर एहसान मत जताओ बल्कि ख़ुदा का शुक्र अदा करो कि उसने उनकी सेवा का अवसर प्रदान किया है। अल्लाह वास्तव में उन कमज़ोरों को आजीविका पहुँचाना चाहता है परन्तु अपनी हिक्मत एवं तत्वदर्शिता के तहत उसने तुम्हें इसका माध्यम बनाया है। यदि तुमने इसमें भूल की और कोताही की तो तुम्हें हटाकर दूसरों से यह सेवा लेगा। हज़रत सअद-बिन-अबी-वक़्क़ास *(रज़ि.)* दानशीलता एवं वीरता में बहुत मशहूर थे। उनके पुत्र मुसअब-बिन-सअद *(रज़ि.)* कहते हैं कि उन्हें यह एहसास हुआ कि दूसरों के मुक़ाबले में उन्हें विशेषता प्राप्त है और वे उनसे बेहतर हैं (सम्भवतः उन्हें यह ख़याल भी हुआ कि उनकी सेवाओं के कारण माले-ग़नीमत में उनका हक़ दूसरों से ज़्यादा है) इसपर अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "तुम्हें तुम्हारे ज़ईफ़ों (वृद्धों अथवा कमज़ोर व्यक्तियों) ही की वजह से (आजीविका) दी जाती है और मदद की जाती है।"
>
> (हदीस : बुख़ारी)

एक अन्य हदीस में यह रिवायत इन शब्दों में भी आई है—

> "अल्लाह इस उम्मत की मदद तो उसके ज़ईफ़ों के कारण करता है। उनकी दुआ, उनकी नमाज़ और उनके इख़लास (सत्यनिष्ठ भावना) के कारण से।" (हदीस : नसई)

इसमें इस बात की ओर इशारा है कि व्यक्तियों को ही नहीं पूरी उम्मत को भी यदि वर्चस्व एवं कामयाबी प्राप्त होती है तो उसके जवानों

और बहादुरों को न तो इतराना चाहिए कि उनके ज़रीए से यह कारनामा हुआ और न यह समझना चाहिए कि समाज के कमज़ोरों और असहाय लोगों की अपेक्षा वे ऊँची हैसियतवाले हैं, बल्कि यह समझना चाहिए कि उन कमज़ोरों का स्थान ख़ुदा के निकट बहुत ऊँचा है और उन्हीं की पुकार और दुआओं से उन्हें कामयाबी नसीब हुई है। हज़रत अबू-दर्दा *(रज़ि.)* कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* को यह फ़रमाते हुए सुना है—

> "ज़ईफ़ों को तलाश करके मेरे पास लाओ इसलिए कि तुम्हें अपने ज़ईफ़ों ही की वजह से रिज़्क़ दिया जाता है और मदद की जाती है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

एक दूसरी रिवायत के शब्द ये हैं—

> "मुझे अपने ज़ईफ़ों में तलाश करो, इसलिए कि ज़ईफ़ों की वजह से तुम्हें रिज़्क़ भी दिया जाता है और मदद भी की जाती है।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

मतलब यह कि ज़ईफ़ों को तलाश करो ताकि उनका हक़ अदा किया जाए। यह न समझो कि तुम उन्हें खिला-पिला रहे हो, बल्कि यह समझो कि तुम्हें जो कुछ भी मिलता है उन्हीं के कारण मिलता है। अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* स्वयं भी हर समय ज़ईफ़ों की देखभाल करते रहते थे। इसलिए फ़रमाया कि मैं तुम्हें ज़ईफ़ों और लाचारों ही में मिल सकता हूँ, मुझे ढूँढना हो तो इन्हीं के बीच ढूँढो। अमीरों और रईसों तथा ख़ुशहाल लोगों के बीच तुम मुझे नहीं पाओगे।

हक़ीक़त यह है कि इस्लाम जिस तरह का इनसान पैदा करना चाहता है वह पैदा हो जाए तो इनसान कमज़ोरों के साथ हमदर्दी और सहयोग को उपकार तथा एहसान नहीं समझेगा, बल्कि अपना एक अनिवार्य कर्त्तव्य समझेगा। उनका हक़ अदा करने के बावजूद उसे हमेशा अपनी कोताही का एहसास रहेगा।

क़ुरआन ने ईमानवालों की एक विशेषता यह बयान की है कि इनसान के माल में माँगनेवालों और वंचितों का हिस्सा होता है। क़ुरआन में है—

"उनके मालों में माँगनेवालों और वंचितों का हक़ होता है।"

(क़ुरआन, 51:19)

दूसरी जगह फ़रमाया कि उनके माल में माँगनेवालों और वंचितों का एक ज्ञात और निर्धारित हक़ होता है–

"और उनके मालों में माँगनेवालों और वंचितों का एक ज्ञात और निर्धारित हक़ होता है।" (क़ुरआन, 70 : 24-25)

साइल (माँगनेवाला/सवाल करनेवाला) से मुराद वह व्यक्ति है जो अपनी ज़रूरतें बताता है और मदद के लिए हाथ फैलाता है और महरूम (वंचित) से मुराद वह व्यक्ति है जो जीवन-संसाधनों से वंचित होने के बावजूद हाथ नहीं फैलाता। साइल और महरूम में बूढ़े, बीमार, अपाहिज, लावारिस बच्चे और इस प्रकार के सभी लोग आ जाते हैं। उनमें कुछ तो वे होंगे जो अपनी ज़रूरतें बयान करेंगे और मदद के इच्छुक होंगे, और वे भी होंगे जो अपनी ग़रीबी और निर्धनता का ज़िक्र करना तथा मदद माँगना पसन्द नहीं करेंगे। एक मोमिन के माल में उन सबका हिस्सा अनिवार्य रूप से होना चाहिए, और उनकी ज़रूरतों को पूरा करना हुकूमत की भी ज़िम्मेदारी है।

☆☆☆

कमज़ोर लोगों के नैतिक और क़ानूनी अधिकार[1]

अल्लाह का उस व्यक्ति पर बड़ा एहसान है जिसे उसने सही-सालिम और तन्दुरुस्त पैदा किया। दिल, दिमाग़, आँख, कान, नाक और हाथ-पैर दिए। इस दुनिया में वे लोग भी हैं जो इनमें से किसी न किसी नेमत से वंचित हैं। इस्लाम ने उनके अन्दर हिम्मत व हौसला पैदा किया और अपने क़ानून (शरीअत) में उनके लिए सुविधाएँ रखीं। साथ ही उनकी सेवा, उनके प्रति दया और सद्भाव को हर उस व्यक्ति का दीनी (धार्मिक) एवं अख़लाक़ी (नैतिक) फ़र्ज़ क़रार दिया जो अल्लाह की दी हुई शारीरिक एवं मानसिक नेमत से मालामाल हैं।

सब्र (धैर्य) की नसीहत

इस्लाम ने सबसे पहले अपाहिज (Handicapped) व्यक्ति को सब्र की नसीहत की है। उसने कहा कि अल्लाह इनसान को विभिन्न तरीक़ों से आज़माता है। तुम्हारी आज़माइश तुम्हारे अपाहिज होने में है। सब्र करोगे तो इसका अच्छा बदला पाओगे। ख़ुदा के फ़ैसलों को ख़ुशी-ख़ुशी स्वीकार करना, उसकी प्रसन्नता, इनाम और उसके प्रियपात्र बनने का हक़दार बनाता है। हाय-तौबा, शिकवा-शिकायत निरर्थक है। इससे किसी कमी की पूर्ति नहीं होती। अलबत्ता सब्र का जो सवाब (अच्छा बदला) है इनसान उससे भी वंचित रहता है।

हज़रत अनस-बिन-मालिक *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि अल्लाह फ़रमाता है—

> "जब मैं अपने बन्दों को उसकी दो महबूब (प्रिय) चीज़ों के ज़रीए आज़माइश में डालूँ और वह सब्र करे तो मैं उनके बदले उसे जन्नत अता करूँगा। दो महबूब चीज़ों से आपका तात्पर्य आँखों से था।" (हदीस : बुख़ारी)

---

1. कमज़ोर व्यक्तियों एवं वर्गों के अन्तर्गत अपाहिज (Handicapped) भी आते हैं। इस्लाम ने उनके सम्बन्ध में काफ़ी विस्तृत निर्देश दिए हैं। यहाँ उनका उल्लेख अलग से किया जा रहा है।

हज़रत अबू-हुरैरा *(रज़ि.)* इस भावार्थ की एक अन्य हदीस बयान करते हैं—

> "जिस व्यक्ति की मैंने दो महबूब चीज़ें ले लीं और उसने उसपर सब्र किया और अच्छा बदला तथा सवाब तलब करता रहा तो जन्नत के अलावा कोई और बदला मैं उसके लिए पसन्द नहीं करूँगा।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि एक औरत को मिरगी की शिकायत थी, जब उसपर इसका दौरा पड़ता तो उसे अपने कपड़ों का भी होश नहीं रहता था। उसने अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* से दुआ की दरख़ास्त की। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "तुम चाहो तो मैं दुआ करूँ (उम्मीद है अल्लाह ठीक कर देगा) चाहो तो सब्र करो। अल्लाह उसके बदले जन्नत अता करेगा।" उसने कहा, तब तो सब्र ही करूँगी, अलबत्ता आप दुआ फ़रमा दीजिए कि दौरे की हालत में मैं बेपर्दा न हुआ करूँ। आप *(सल्ल.)* ने इसकी दुआ फ़रमाई।

(हदीस : बुख़ारी)

उस औरत ने दुआ की दरख़ास्त की। आप *(सल्ल.)* ने उसकी दरख़ास्त रद्द तो नहीं की परन्तु सब्र की फ़ज़ीलत (बड़ाई) बयान की और उसको नसीहत की। हो सकता है इसी को आपने उसके हक़ में बेहतर समझा हो, परन्तु इसे जानने का हमारे पास कोई ज़रीआ नहीं है। यहाँ यह ग़लतफ़हमी नहीं होनी चाहिए कि अपाहिज व्यक्ति दुआ न करे। वह इस बात की दुआ कर भी सकता है और करा भी सकता है कि अल्लाह उसे विकलाँगता से मुक्ति दे, बल्कि उसे आराम-आफ़ियत की दुआ करते रहना चाहिए। अलबत्ता यह बात हमेशा याद रहनी चाहिए कि अल्लाह की मर्ज़ी होगी और उसे वह उसके हक़ में लाभदायक समझेगा तो दुआ क़बूल होगी अन्यथा नहीं होगी। उसे हर हाल में अल्लाह के फ़ैसले पर राज़ी और सन्तुष्ट होना चाहिए और कभी सब्र का दामन नहीं छोड़ना चाहिए। हदीसों में जहाँ सब्र की नसीहत की गई है वहीं अपने कष्टों से मुक्ति पाने के लिए अल्लाह से दुआ की शिक्षा भी दी गई है।

हज़रत उसमान-बिन-हनीफ़ बयान करते हैं कि एक अन्धे व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* से दुआ की दरख़्वास्त की कि अल्लाह आँखों को रौशनी और राहत दे। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि तुम चाहो तो मैं दुआ कर सकता हूँ, परन्तु सब्र करो तो यह तुम्हारे हक़ में बेहतर है। उसने पुनः दुआ ही की दरख़्वास्त की तो आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, तुम अच्छी तरह वुज़ू करके यह दुआ करो—

> "ऐ अल्लाह! मैं तुझसे सवाल करता हूँ और तेरे नबी मुहम्मद *(सल्ल.)* के वास्ते से, जो नबी-ए-रहमत हैं, तेरी ओर ध्यान लगाता हूँ। मैंने आप *(सल्ल.)* के ज़रीए अपने रब की ओर रुजूअ किया है ताकि वह मेरी ज़रूरत पूरी कर दे। ऐ अल्लाह! मेरे सिलसिले में इनकी शफ़ाअत क़बूल फ़रमा।"
>
> (हदीस : तिर्मिज़ी)

विकलांग व्यक्ति को अपनी महरूमी का गहरा एहसास होता है। उसपर मायूसी छाई रहती है और वह हालात से मुक़ाबले की अपने अन्दर शक्ति नहीं पाता। इस कारण सब्र की उसके लिए बड़ी अहमियत है। इससे उसे तसल्ली और मानसिक सुकून मिलता है कि आज यद्यपि वह एक नेमत से वंचित है, लेकिन ख़ुदा के यहाँ उसका बेहतरीन बदला उसे मिलनेवाला है। सब्र उसे हाय-तौबा और शिकवा-शिकायत से रोकता है। एक मोमिन की बड़ी ख़ूबी यह है कि वह हमेशा अल्लाह की मर्ज़ी के प्रति राज़ी और सन्तुष्ट रहता है। यह ख़ूबी ज़िन्दगी के हर नाज़ुक दौर में काम आती और उसे दृढ़ प्रतिज्ञ रखती है। सब्र यह नहीं है कि आदमी बेबसी और बेचारगी की प्रतिमूर्ति बना रहे, बल्कि सब्र दृढ़ इच्छा-शक्ति और हिम्मत-हौसले का नाम है। सब्र का गुण एक विकलाँग और कमज़ोर व्यक्ति के अन्दर भी हौसला पैदा करता है कि वह हिम्मत हारकर बैठ न जाए बल्कि हालात का मुक़ाबला करे और जीवन-संघर्ष में अपनी भूमिका निभाए।

ज़िम्मेदारियों (कर्त्तव्यों) में कटौती

विकलांग व्यक्ति को यह एहसास परेशान कर सकता है और करता है कि वह ख़ुदा के दीन की ख़िदमत उस प्रकार नहीं कर पा रहा है जिस

प्रकार अन्य लोग कर रहे हैं। इस्लाम ने उसे इत्मीनान दिलाया कि अल्लाह ने हर एक पर उसकी ताक़त-भर बोझ डाला है। उसपर उन बहुत-से कामों की ज़िम्मेदारी नहीं है जो सही-सालिम और तंदुरुस्त इनसानों पर है। जिहाद की इस्लाम में बड़ी फ़ज़ीलत (माहात्म्य) है। इस्लामी रियासत इसे अपने नागरिकों पर फ़र्ज़ (अनिवार्य) भी क़रार दे सकती है। इस स्थिति में किसी का इससे पीछे रह जाना बहुत बड़ा गुनाह है, परन्तु अपाहिज पर ऐसी अनिवार्यता नहीं होगी। अतः जिहाद के आदेशों के संदर्भ में क़ुरआन में है–

> "न अन्धे पर कोई गुनाह है, न लंगड़े पर कोई गुनाह है और न बीमार पर कोई गुनाह है (यदि वे जिहाद में शामिल न हों)। और जो व्यक्ति अल्लाह और रसूल का आज्ञापालन करेगा, अल्लाह उसे जन्नतों में दाख़िल करेगा, जिनके नीचे नहरें बह रही होंगी, और जो व्यक्ति अवज्ञा करेगा उसे वह दर्दनाक अज़ाब देगा।" (क़ुरआन, 48:17)

एक जगह क़ुरआन ने कहा कि अल्लाह की राह में जिहाद करनेवाले और जिहाद न करनेवाले समान नहीं हो सकते। जिहाद करनेवालों के बड़े दर्जे हैं। साथ ही यह भी कहा कि इस सिद्धान्त से विकलांग बरी हैं। कहा गया है–

> "ईमानवालों में से वे लोग जो किसी उज़्र (कारण) के बग़ैर जिहाद से बैठ रहें और वे जो अल्लाह के रास्ते में अपनी जान-माल से जिहाद करें, बराबर नहीं हैं। अपने माल और जान से जिहाद करनेवालों को अल्लाह ने बैठ रहनेवालों के मुक़ाबले में बड़ा ऊँचा दर्जा प्रदान किया है। यद्यपि हर एक से अल्लाह ने भलाई का वादा किया है, लेकिन उसने मुजाहिदीन को बैठ रहनेवालों के मुक़ाबले में अज्रे-अज़ीम (बड़े इनाम) से नवाज़ा है। यानी उस (अल्लाह) की ओर से बड़े दर्जे और मग़फ़िरत (क्षमा) व रहमत (दयालुता) है, और अल्लाह ग़फ़ूर (क्षमा करनेवाला) व रहीम (दया करनेवाला) है।" (क़ुरआन, 4:95-96)

उपरोक्त आयतों में अपाहिजों को अलग करके इस ओर इशारा किया गया है कि यदि किसी के अन्दर निष्ठा के साथ ख़ुदा की राह में

जान-माल लुटाने का जज़्बा है और वह केवल अपनी मजबूरी एवं अत्यावश्यक कारणों से इसमें हिस्सा नहीं ले रहा है तो अल्लाह उसे भी मुजाहिदों का सवाब अता फ़रमाएगा। हदीसों में यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है। हज़रत अनस *(रज़ि.)* बयान करते है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने एक जंग के समय फ़रमाया—

> "बेशक हमारे पीछे कुछ लोग रह गए हैं, हम जिस घाटी और वादी में भी चलें, वे अपनी नीयत और इरादे की वजह से हमारे साथ हैं। उन्हें विवशता ने रोक रखा है।" (हदीस : बुख़ारी)
>
> यही हदीस इन शब्दों में भी बयान हुई है—
>
> "तुमने मदीना में कुछ लोगों को छोड़ा है कि तुम थोड़ा या बहुत जो चलते हो या ख़र्च करते हो या कोई घाटी पार करते हो, वे तुम्हारे ही साथ होते हैं। सहाबा ने कहा कि वे मदीना में रहते हुए हमारे साथ कैसे हो सकते हैं। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि ये वे लोग हैं जिनको इच्छा के बावजूद, विवशता ने रोक रखा है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

बीमारी और सफ़र के संसाधन न होना भी विवशता है परन्तु शरीरिक विवशता इनमें सबसे बढ़कर है। ऊपर जिन आयतों का हवाला दिया गया है उनमें इसी का उल्लेख है। ये हदीसें अपने सामान्य शब्दों से इसकी पुष्टि करती हैं।

जमाअत के साथ नमाज़ की बड़ी फ़ज़ीलत है। कुछ लोगों ने जिहाद से सम्बन्धित आयतों से यह दलील ली है कि 'विवशता' के कारण जमाअत में सम्मिलित होना ज़रूरी नहीं है। एक हदीस में इसे स्पष्ट भी किया गया है। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास *(रज़ि.)* रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "जो अज़ान सुने और जमाअत में शामिल होने के लिए न आए तो उसकी नमाज़ नहीं होगी, सिवाय इसके कि उसे कोई उज़्र (विवशता) हो और इस वजह से वह न पहुँचे।"
>
> (हदीस : इब्ने-माजा)

यहाँ दो मिसालें दी गई हैं। इनके अलावा और भी ऐसी मिसालें पेश की जा सकती हैं जिनमें शरीअत ने 'विवशता' के कारण अपने आदेशों से ऐसे लोगों को बरी रखा है अथवा कुछ रिआयत करते हुए आदेशों में कुछ छूट दी है।

अपाहिज व्यक्ति की प्रतिभाओं की सराहना

कुछ व्यक्ति किसी न किसी शारीरिक कमज़ोरी के बावजूद बहुत-सी क्षमताओं, योग्यताओं के स्वामी और प्रतिभाशाली होते हैं। यदि उनका प्रोत्साहन हो और उन्हें अवसर उपलब्ध कराए जाएँ तो वे भी सम्माननीय जीवन गुज़ार सकते हैं और समाज के लिए लाभदायक भी सिद्ध हो सकते हैं। इस्लाम किसी भी विकलांग के अन्दर मौजूद ख़ूबियों और योग्यताओं की सराहना करता है और उनसे फ़ायदा उठाता है। अपनी अपंगता एवं विवशता के बावजूद वह कोई सेवा कार्य करे तो उसे इज़्ज़त की निगाह से देखता है। वर्तमान समय में दीनी ख़िदमत, बड़ी हद तक अपना मान-सम्मान खो चुकी है। इसलिए अज़ान और इमामत जैसे कामों को हिक़ारत (हेय) की नज़र से देखा जाता है और इन कार्यों के लिए आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से पिछड़े व्यक्ति का चयन किया जाता है। हालाँकि इस्लाम के नज़दीक इसकी बड़ी अहमियत है। इनके लिए योग्य, प्रतिभावान और ईशपरायण लोगों के चयन का आदेश है। आरम्भिक काल में इसी पर अमल था। इस पृष्ठभूमि में यह देखिए कि रिसालत काल में इमामत और अज़ान पुकारने का काम कौन अंजाम दे रहा था। जब तक नबी *(सल्ल.)* जीवित थे खुद ही इमामत करते रहे। अलबत्ता दो मुअज़्ज़िन आपने नियुक्त किए थे। उनमें से एक हज़रत बिलाल *(रज़ि.)* और दूसरे अम्र इब्ने-उम्मे-मक्तूम *(रज़ि.)* थे। (हदीस : मुस्लिम)

हज़रत बिलाल *(रज़ि.)* आज़ाद किए गए गुलाम थे और हज़रत अम्र-इब्ने-उम्मे-मक्तूम *(रज़ि.)* अन्धे थे। इससे अन्दाज़ा किया जा सकता है कि इस्लाम गुलामों और अपाहिजों को क्या स्थान देता है और उनकी कितनी इज़्ज़त करता है? इससे बड़ी घटना यह है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* तबूक की जंग के लिए रवाना हुए तो अम्र-इब्ने-उम्मे-मक्तूम *(रज़ि.)* को इमामत के लिए अपना नायब नियुक्त किया। (हदीस : अबू-दाऊद)

यह कोई संयोग नहीं था। बराअ-बिन-आज़िब *(रज़ि.)* कहते हैं कि मक्का से हिजरत करके सबसे पहले मुसअब-बिन-उमैर *(रज़ि.)* हमारे पास मदीना पहुँचे। उनके बाद अम्र-इब्ने-उम्मे-मक्तूम *(रज़ि.)* आए। अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* अधिकतर जंगों के अवसर पर अपने पीछे उन्हें अपना नायब नियुक्त फ़रमाते थे और वे मदीना में इमामत किया करते थे।

(इब्ने-हजर)

अल्लामा-इब्ने-अब्दुल-बर्र, वाक़िदी के हवाले से कहते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने उन्हें तेरह जंगों के अवसर पर मदीना में अपना नायब नियुक्त किया। (इब्ने-अब्दुल-बर्र)

उतबान-बिन-मालिक अनसारी *(रज़ि.)* उन सहाबा में हैं जो बद्र की जंग में शरीक हुए थे। आख़िर उम्र में उनकी आँखों की रौशनी जाती रही परन्तु अपने क़बीले की इमामत वही किया करते थे।

(हदीस : बुख़ारी)

उमैर-बिन-अदी-बिन-ख़रशा *(रज़ि.)* के बारे में बताया जाता है कि वे अन्धे थे परन्तु अपने क़बीले में सबसे पहले इस्लाम लाए, क़ुरआन मजीद भी कुछ ज़बानी याद था इस वजह से क़ारी कहलाते थे, अपने क़बीले की इमामत वही करते थे।

(अल-असाबा 4:599; अल-इस्तिआब 3:291)

अपाहिज दोहरा सवाब पाता है

इस्लाम की अवधारणा यह है कि अपाहिज (अथवा विवश व्यक्ति) अपनी विवशता के बावजूद कोई दीनी काम अंजाम देता है तो उसका अज्र व सवाब भी ख़ुदा के नज़दीक ज़्यादा है। इसलिए कि उसे ज़्यादा मेहनत और तक्लीफ़ बर्दाश्त करनी पड़ती है। अतः हज़रत आइशा *(रज़ि.)* बयान करती हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "क़ुरआन में महारत रखनेवाला उन (फ़रिश्तों) के साथ होगा जो अल्लाह की किताबों के लिखनेवाले और बहुत ही नेक हैं। जो व्यक्ति क़ुरआन पढ़ता है और उसमें रुकावट महसूस करता है इस वजह से क़ुरआन का सीखना और पढ़ना उसके

लिए कठिन है तो उसको दुगना अज्र मिलेगा।"

(हदीस : मुस्लिम)

इस हदीस में एक ओर तो क़ुरआन के माहिर (विशेषज्ञ) की फ़ज़ीलत (बड़ाई) बयान हुई है कि उसे उन महान एवं पवित्र फ़रिश्तों का सान्निध्य प्राप्त होगा, जो क़ुरआन का ज्ञान रखनेवाले हैं और जिनके हाथों में यह पवित्र ग्रंथ है। दूसरी ओर उस व्यक्ति को उत्साहित किया गया है जिसे उस प्रकार की महारत प्राप्त नहीं है और जो ज़बान में हकलाहट के कारण या इस वजह से कि उसकी योग्यता ही कम है, क़ुरआन स्पष्ट रूप से नहीं पढ़ पाता परन्तु इसके बावजूद क़ुरआन पढ़ने की भरसक कोशिश कर रहा है और मेहनत व मशक़्क़त से क़ुरआन पढ़ता है। उसका अज्र एक सामान्य पढ़नेवाले के मुक़ाबले में दुगना होगा। क़ुरआन पढ़ने के बारे में यहाँ जो बात कही गई है उसी पर उन सब इबादतों और दीनी कामों का अनुमान लगाया जा सकता है, जिन्हें एक कमज़ोर (विवश व्यक्ति) कठिनाई के बावजूद अंजाम देता है।

इस प्रकार इस्लाम ने बीमारों और कमज़ोरों (विवश व्यक्तियों) के अन्दर एक नई ताक़त और स्फूर्ति पैदा कर दी और उन्होंने बड़े जोश और उत्साह से दीनी सेवाएँ अंजाम दीं।

जमाअत के साथ नमाज़ के सिलसिले में सहाबा किराम के शौक़ और लगाव का हाल बयान करते हुए हज़रत अब्दुल्लाह-इब्ने-अब्बास *(रज़ि.)* फ़रमाते हैं—

"बेशक मरीज़ (भी) दो आदमियों के बीच (सहारे से) चलकर नमाज़ में पहुँचता था।" (हदीस : मुस्लिम)

एक दूसरी रिवायत के शब्द हैं—

"आदमी को दो आदमियों के बीच में (सहारा देकर) लाया जाता और (नमाज़) की पंक्ति में खड़ा किया जाता।"

(हदीस : मुस्लिम)

अम्र-इब्ने-उम्मे-मक्तूम *(रज़ि.)* का उल्लेख इससे पहले हो चुका है। अन्धे होने के बावजूद वे क़ादसिया की जंग में शरीक थे। इसी जंग में शहादत पाई। (इब्ने-अब्दुल-बर्र)

समाज की ज़िम्मेदारी

इस्लाम ने जहाँ अपाहिजों के अन्दर आत्मविश्वास, हिम्मत व उत्साह और सुदृढ़ता पैदा की वहीं समाज को भी उनके प्रति ज़िम्मेदारियाँ याद दिलाईं और कहा कि इन ज़िम्मेदारियों को पूरा करके तुम अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हो, किसी पर एहसान नहीं करते हो।

अपाहिजों को इज़्ज़त दी जाए

प्रायः अपाहिजों को समाज में हिक़ारत (हेय) की नज़र से देखा जाता है। इस्लाम की शिक्षा यह है कि उन्हें निम्नतर न समझा जाए और इज़्ज़त की जगह दी जाए। अतः मक्का के आरम्भिक काल की घटना है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* कुछ क़ुरैशी सरदारों से इस्लाम पर बातचीत फ़रमा रहे थे कि उसी समय अम्र-उम्मे-मक्तूम *(रज़ि.)* पहुँच गए। उनका अचानक आगमन आपको यह सोचकर बुरा लगा कि ये अरब के गणमान्य लोग एक अन्धे के साथ किसी मजलिस (सभा) में नहीं बैठ सकते थे। आपकी तीव्र इच्छा थी कि किसी प्रकार इन्हें ख़ुदा का पैग़ाम सुनाएँ, इसलिए कि यदि इनके दिल इसके लिए खुल गए और इन्होंने इस्लाम क़बूल कर लिया तो दूसरों को भी प्रेरणा मिलेगी और वे भी इसकी ओर आगे बढ़ेंगे। क़ुरआन ने उन सरकशों के पीछे इस तरह पड़ने से मना किया और कहा कि हक़ (सत्य) को स्वीकार करने में उन ही का फ़ायदा है। यदि नहीं स्वीकार करते हैं तो तुम्हारा कोई नुक़सान नहीं, पूर्णतः उन्हीं का नुक़सान है। उन सरकशों के लिए अल्लाह के उन बन्दों की ओर तुम्हारा ध्यान कम न हो जिनके दिल ख़ुदा के डर से भरे हुए हैं। क़ुरआन ने कहा—

> "उसने त्योरी चढ़ाई और मुँह फेर लिया इसपर कि एक अन्धा उसके पास आया। और तुम्हें क्या मालूम कि शायद वह तज़किया (शुद्धि/पवित्रता) चाहता हो। या नसीहत हासिल

करना चाहता हो और नसीहत उसके लिए मुफ़ीद (लाभदायक) हो, लेकिन जो बेपरवाही करता है तुम उसके पीछे पड़े हो। यदि वह तज़किया न हासिल करे तो तुमपर कोई इल्ज़ाम नहीं है। लेकिन जो तुम्हारे पास दौड़ कर आ रहा है और वह अल्लाह से डरता है तो तुम उससे ग़फ़लत बरतते हो। हरगिज़ नहीं, यह तो नसीहत है जो चाहे इससे नसीहत हासिल करे।"

(क़ुरआन, 80:1-12)

इस प्रकार इस्लाम ने स्पष्ट कर दिया कि अल्लाह के निकट इज़्ज़त और सम्मान का मापदण्ड ऊपरी तामझाम, सेहत-तंदुरुस्ती तथा माल-दौलत नहीं बल्कि ईशभय, पवित्र और शुद्ध आत्मा एवं अख़लाक़-आचरण की शुद्धता है। वह अन्धा व्यक्ति जिसके अन्दर हक़ (सत्य) की तलब है, जो अपना सुधार और शुद्ध होना चाहता है वह उन ख़ूबसूरत आँखोंवालों से श्रेष्ठ एवं महान है जिनके दिल पत्थर के बन चुके हैं और जो अपने धन-दौलत के घमंड में ख़ुदा की हिदायत से अपने को बेनियाज़ और अलग समझ रहे हैं। उन सरकशों और ज़ालिमों की ख़ातिर ख़ुदा के अपाहिज और मजबूर बन्दों से बेरुख़ी बरतना सही नहीं है।

अपाहिज के अन्दर प्रायः हीन भावना भी होती है। वह दूसरों से मिलने-जुलने, खाने-पीने और सामाजिक सम्बन्ध रखने में संकोच करता है। इस्लाम ने इस हीन भावना को दूर किया। इसलिए कि जब तक यह भावना बाक़ी है वह अपने को कमतर ही समझेगा और तंदुरुस्त एवं स्वस्थ लोगों के बीच बैठने से परहेज़ करेगा। अतः एक जगह सामाजिक आदेशों के संदर्भ में फ़रमाया—

"न तो अन्धे के लिए कोई हरज है और न लंगड़े के लिए हरज है, और न मरीज़ के लिए कोई हरज है और न ख़ुद तुम्हारे लिए हरज है कि तुम अपने घरों से खाओ।"

(क़ुरआन, 24:61)

मतलब यह कि अपाहिजों और मरीज़ों को प्रियजनों, रिश्तेदारों और दोस्त-मित्र के यहाँ आने-जाने और खाने-पीने की पूरी इजाज़त है। जब इस्लाम ने इसपर पाबन्दी नहीं लगाई है तो वे भी किसी प्रकार की पाबन्दी न महसूस करें। वे समाज से अलग नहीं हैं बल्कि उसी का एक

हिस्सा हैं और सबसे बराबरी के सम्बन्ध रख सकते हैं।

कुछ लोग मरीज़ों और अपाहिजों के साथ मिलने-जुलने और खाने-पीने में संकोच तथा कराहत महसूस करते हैं। इस आयत में उनपर भी गिरफ़्त की गई है और कहा गया है कि उनके आने-जाने से किसी को बुरा नहीं लगना चाहिए। यह उनका हक़ है, और तुम्हारा फ़र्ज़ (कर्त्तव्य) है कि उनकी सेवा करो, यह नहीं कि उनसे नफ़रत करो और दूर भागो।

अपाहिजों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाए

इस्लाम ने समाज को अपाहिजों, कमज़ोरों और मजबूर व्यक्तियों की मदद और सहयोग पर उभारा है और उनके साथ सद्व्यवहार का आदेश दिया है। उनकी मदद के कई तरीक़े हो सकते हैं। उनमें से एक आर्थिक मदद भी है। आर्थिक सहयोग की अहमियत सामान्यतः महसूस भी की जाती है और इसी को सदक़ा और ख़ैरात कहा जाता है, परन्तु मदद के अन्य तरीक़े भी अहमियत रखते हैं। कभी-कभी उनकी ज़्यादा ज़रूरत होती है। इस्लाम ने आर्थिक और ग़ैर-आर्थिक हर प्रकार की मदद की शिक्षा दी है। उसके निकट ख़ुदा के बन्दों पर जिस प्रकार माल ख़र्च करना सदक़ा है उसी प्रकार अपनी योग्यता और शक्ति तथा क्षमता को ख़र्च करना भी सदक़ा है। आदमी अल्लाह के ज़िक्र, तस्बीह और इबादत ही से नहीं बल्कि अपने अख़लाक़, आचरण, जनसेवा, कमज़ोरों-अपाहिजों के साथ भलाई करके और समाज में नेकी फैलाकर तथा लोगों को बुराई और पापकर्म से रोककर भी अल्लाह की दी हुई शक्ति, क्षमता एवं योग्यता का हक़ अदा कर सकता है।

हज़रत अबू-ज़र *(रज़ि.)* की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, तुम्हारा अपने भाई के सामने मुस्कराना भी सदक़ा है। मारूफ़ (भलाई) का हुक्म देना और मुनकर (बुराई) से रोकना भी सदक़ा है। किसी भटके हुए को रास्ता दिखाना भी सदक़ा है। किसी अन्धे की मदद करना भी सदक़ा है। रास्ता से हड्डी, काँटा और पत्थर हटा देना भी सदक़ा है और अपने भाई के डोल में डोल से पानी भर देना भी सदक़ा है।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

इससे ज़्यादा एक अन्य हदीस में स्पष्ट किया गया है—

> "हज़रत अबू-ज़र *(रज़ि.)* कहते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि 'हर रोज़ जब सूरज उगता है तो इनसान पर अपने नफ़्स (निज) की ओर से सदक़ा वाजिब हो जाता है।' मैंने अर्ज़ किया, 'ऐ अल्लाह के रसूल! हमारे पास तो माल नहीं है कि हर दिन सदक़ा (दान) किया जाए।' अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, 'सदक़े की बहुत-सी सूरतें हैं। उन ही में से 'अल्लाहु-अकबर', 'अल्हम्दुलिल्लाह', 'ला इला-ह इल्लल्लाह' 'अस्तग़फ़िरुल्लाह' कहना भी सदक़ा है। मारूफ़ (सत्य) का हुक्म दो, मुनकर से रोको। रास्ते से काँटा, हड्डी और पत्थर हटा दो, किसी अन्धे को राह दिखा दो, गूँगे और बहरे को बात समझा दो, किसी ज़रूरतमन्द को उस जगह की निशानदेही कर दो जहाँ से तुम्हारे ख़याल में उसकी मदद हो सकती है, किसी मुसीबत में घिरे व्यक्ति की मदद के लिए दौड़-धूप करो और कमज़ोर की मदद के लिए तैयार हो जाओ। ये सब सदक़े की सूरते हैं।" (हदीस : मुस्नद अहमद)

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "जो व्यक्ति चालीस क़दम किसी अन्धे का मार्गदर्शन करे तो उसके पिछले गुनाह माफ़ कर दिए जाएँगे।"(हदीस : इब्ने-हजर)

अपाहिजों को सान्त्वना दी जाए

अपाहिज के लिए इसकी भी बड़ी अहमियत है कि उसे सान्त्वना दी जाए। उसके साथ हमदर्दी और सहानुभूति प्रकट की जाए और उसकी भावनाओं का सम्मान किया जाए। इससे उसे तसल्ली और राहत मिलती है और अजनबियत का एहसास भी नहीं होता। इस मामले में अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के सदाचरण एवं सद्व्यवहार का अन्दाज़ा आगे की इस घटना से हो सकता है।

हज़रत उत्बान-बिन-मालिक *(रज़ि.)* की आख़िर उम्र में आँखों की रौशनी जाती रही थी। उन्होंने अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* से अर्ज़ किया कि बारिश के दिनों में मैं मस्जिद नहीं पहुँच सकता। आप मेरे घर किसी जगह नमाज़ अदा फ़रमा दें ताकि मैं वहीं नमाज़ अदा किया करूँ। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "बहुत अच्छा। इंशाअल्लाह हम ज़रूर आएँगे।" हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के साथ उत्बान *(रज़ि.)* के घर आए। मालूम किया कि किस जगह चाहते हो कि नमाज़ पढ़ूँ? मैंने एक कोने की तरफ़ इशारा किया। आप *(सल्ल.)* ने दूसरे रोज़ दिन चढ़ने के बाद दो रकअत नमाज़ पढ़ी। हमने भी आपके पीछे नमाज़ अदा की और सलाम फेरा। फिर हमने ख़ज़ीर (जो गोश्त और आटे से बनाया जाता था) खिलाने के लिए आपको (थोड़ी देर) रोक लिया। (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत ज़ुबैर-बिन-मुतअम *(रज़ि.)* कहते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने हमसे फ़रमाया कि 'वाक़िफ़' मुहल्ला चलो, ताकि बसीर से मुलाक़ात कर आएँ। बसीर एक नाबीना (अन्धे व्यक्ति) थे। (तरग़ीब व तरहीब)

अपाहिजों के साथ दुर्व्यवहार न किया जाए

एक तरफ़ इस्लाम ने शारीरिक रूप से कमज़ोरों और अपाहिजों के साथ सद्व्यवहार की फ़ज़ीलत (बड़ाई) बयान की और उसकी प्रेरणा दी, तो दूसरी तरफ़ उनके साथ दुर्व्यवहार करने और उन्हें परेशान करने से मना किया और इसे ख़ुदा के अज़ाब तथा अप्रसन्नता का कारण बताया। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"अल्लाह की लानत (प्रकोप) है उस व्यक्ति पर जिसने अन्धे को रास्ते से भटकाया।" (हदीस : मुस्नद अहमद)

पागल (मानसिक रोगी) ज़िम्मेदारियों से मुक्त है

शारीरिक विकलांगता से भी ज़्यादा संगीन, कष्टदायक और भयानक विकलांगता मानसिक विकलांगता है। इसकी भी विभिन्न कोटियाँ हैं। इसका चरम रूप जुनून और पागलपन है, जिसमें इनसान होश-हवास तथा चेतना खो बैठता है और उसे अपने अमल (व्यवहार) और उसके परिणामों की समझ नहीं रहती। अक़्ल और होश ही की वजह से

इनसान किसी भी अमल का ज़िम्मेदार समझा जाता है। इस्लाम ने मानसिक विकलांग व्यक्ति को तमाम शरई ज़िम्मेदारियों से मुक्त रखा है। हज़रत अली *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "तीन लोगों से क़लम उठा लिया गया है (अर्थात उनकी ग़लतियों का कोई लेखा नहीं रखा जाता)— मजनूँ (पागल) से जब तक कि उसकी अक़्ल बहाल न हो जाए। बच्चे से जब तक कि वह बालिग़ (व्यस्क) न हो जाए। सोनेवाले से जब तक कि वह जाग न जाए।" (हदीस : बुख़ारी)

पागल से सम्बन्धित कुछ आदेश

हमारे फ़ुक़हा (इस्लामी विधान के विशेषज्ञ) ने पागल के सिलसिले में निम्नलिखित बातें लिखी हैं—

1. पागल या मजनूँ पर कोई शरई ज़िम्मेदारी नहीं होती। इसका मतलब यह है कि अल्लाह ने जो फ़राइज़ व वाजिबात (अत्यावश्यक एवं आवश्यक ज़िम्मेदारी) निर्धारित किए हैं, उनके अदा न करने पर उससे कोई पूछताछ नहीं होगी।
2. वह कोई गुनाह या नाफ़रमानी का काम कर बैठे तो उससे कोई बदला नहीं लिया जाएगा।
3. पागल द्वारा की गई कारवाइयों को क़ानूनी मान्यता नहीं मिलेगी। यानी यदि वह लेन-देन करे, हिबा (सम्पत्ति वक़्फ़ करे), या निकाह-तलाक़ आदि के सिलसिले में कोई क़दम उठाए तो उसके ये निर्णय अप्रभावी होंगे, उन्हें लागू नहीं किया जाएगा।
4. उससे दण्डनीय अपराध हो जाए तो उसे दण्ड नहीं दिया जाएगा।
5. अलबत्ता यदि उसके कारण किसी के जान-माल का नुक़सान हो तो उसका तावान (जुर्माना) अदा किया जाएगा। (हिदाया)

इस प्रकार इस्लाम ने एक ओर पागल को आख़िरत (परलोक) के हिसाब-किताब से बरी रखा है और दूसरी ओर उसके हितों की सुरक्षा की है ताकि उसके साथ किसी प्रकार की ज़्यादती न हो और कोई उसकी मानसिक विकलांगता से ग़लत फ़ायदा न उठा पाए।

कमज़ोर अक़्ल (मन्द-बुद्धि) वालों को सुविधाएँ

कुछ लोग मजनूँ और पागल तो नहीं होते, अलबत्ता मानसिक रूप से अति दुर्बल होते हैं। उनमें मामले की समझ नहीं होती और वे अच्छे-बुरे का भेद नहीं कर सकते। इस्लाम की शिक्षा यह है कि किसी भी मामले में उन्हें धोखा न दिया जाए। लेन-देन में उनके साथ रिआयत की जाए और उनके साथ बेहतर से बेहतर सुलूक किया जाए।

एक अनसारी सहाबी इसी प्रकार की मानसिक कमज़ोरी में ग्रस्त थे। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि उन्होंने अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* से कहा कि कारोबार किए बग़ैर रहा नहीं जाता और कारोबार करता हूँ तो धोखा खा जाता हूँ। रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "जब किसी से मामला करो तो 'ला ख़लाबता' (हमारे दीन में धोखा-धड़ी नहीं है) कह दिया करो।" अतः वे जब भी मामला करते तो 'ला ख़लाबता' कह दिया करते थे। (हदीस : बुख़ारी व मुस्लिम)

यह हदीस आज के समाज और इस्लामी समाज के अन्तर को समझने में हमारी मदद करती है। आज यदि किसी की कमज़ोरी और विकलांगता या विवशता का ज्ञान हो जाए तो उसके शोषण की कोशिश की जाएगी, परन्तु इस्लामी समाज में यदि किसी को इस बात की जानकारी हो जाती कि अमुक व्यक्ति विकलांग है तो उसे मुहब्बत, हमदर्दी और भलाई का ज़्यादा हक़दार समझा जाता। उससे फ़ायदा उठाने की जगह उसे ज़्यादा से ज़्यादा लाभ पहुँचाने की कोशिश की जाती। इसलिए एक इस्लामी समाज में 'ला ख़लाबता' कह देना इस बात को और ज़्यादा यक़ीनी बना देता है कि उसे धोखा हरगिज़ नहीं दिया जाएगा और उसके साथ हर सम्भव रिआयत की जाएगी। जिस सादगी और सरल स्वभाव के कारण आज इनसान बाज़ार में लुट जाता है, इस्लामी समाज में वही उसे हर नुक़सान से सुरक्षित रखता है।

अपाहिज का भरण-पोषण

जो व्यक्ति अन्धा, लूला, लंगड़ा, अपाहिज या बौद्धिक दृष्टि से विकलांग होने के कारण कमाने योग्य न हो तो इस्लामी क़ानून के

अनुसार सबसे पहले उसका बाप उसके भरण-पोषण का ज़िम्मेदार होगा। बाप न हो तो क़रीबी रिश्तेदार पर उसकी आजीविका की ज़िम्मेदारी होगी। (हिदाया)

क़रीबी रिश्तेदार न हों या वे उसके आर्थिक बोझ को उठाने के योग्य न हों तो इस्लामी स्टेट यह बोझ उठाएगी और उसका भरण-पोषण करेगी।

इस्लामी स्टेट उसके खाने-पहनने ही की नहीं बल्कि अन्य ज़रूरतें भी पूरी करने की कोशिश करेगी। सईद-बिन-यरबूअ *(रज़ि.)* एक क़ुरैशी सहाबी थे। उनकी आँखों की रौशनी किसी वजह से जाती रही तो हज़रत उमर *(रज़ि.)* हाल-चाल लेने और बीमारपुर्सी के लिए तशरीफ़ ले गए। इसी के साथ फ़रमाया कि आप जमाअत के साथ नमाज़ और जुमा की नमाज़ तर्क न कीजिए। उन्होंने कहा, मस्जिद तक पहुँचानेवाला कोई नहीं है। हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने फ़रमाया, हम इसका इंतिज़ाम कर देंगे। आपके पास उस समय ग़ुलाम थे जिनमें से एक लड़के को इस काम के लिए भेज दिया। (अल-इसाबा)

जब इस्लामी स्टेट एक अन्धे की जमाअत के साथ नमाज़ और जुमा में सम्मिलित होने का इन्तिज़ाम कर सकती है तो उसकी बुनियादी ज़रूरतों को प्राथमिकता क्यों नहीं देगी?

☆☆☆

प्रतिरक्षा का अधिकार

दुनिया का कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे पर किसी प्रकार का ज़ुल्म करे तो उसे आत्मरक्षा का हक़ है। इसे न तो कोई सामान्य व्यक्ति ग़लत कह सकता है और न किसी राज्य ने इसका इनकार किया है। यह सबके निकट एक स्वीकृत अधिकार है। इस अधिकार से किसी को वंचित करना, ज़ुल्म को बढ़ावा देना है। जब भी किसी ने ज़ुल्म के आगे स्वयं घुटने टेक दिए या उसे इसपर मजबूर किया गया तो, इतिहास गवाह है कि ज़ालिम के हौसले बढ़े और ज़ुल्म में बढ़ोत्तरी हुई। यह सब कुछ आज भी हो रहा है। इसका बड़ा नुक़सान यह है कि इससे खुद मज़लूम की मानसिकता बदल जाती है। वह सोचता है कि ज़ुल्म सहना ही उसकी नियति है। वह कभी-कभी यह मानने के लिए भी तैयार नहीं होता कि ज़ुल्म-ज़्यादती का जवाब देना का भी उसका अधिकार है। वह उससे ज़्यादा अपने आप को विवश और मजबूर समझने लगता है जितना वास्तव में वह विवश और मजबूर होता है। बल्कि कभी-कभी तो स्वयं उसकी कायरता तथा नामर्दी ही उसे मज़लूमी के मक़ाम पर पहुँचा देती है।

सच्चाई यह भी है कि प्रतिरक्षा का मामला एक संवेदनशील और नाज़ुक मामला है। इसमें बहुत ज़्यादा सावधानी बरतने की ज़रूरत है। कभी-कभी प्रतिरक्षा के नाम पर ज़ुल्म-ज़्यादती और नाहक़ मारकाट होने लगती है और इसकी निर्धारित सीमाओं तथा पाबन्दियों का ख़याल नहीं रखा जाता है। जब यह काम इस्लाम के नाम पर होता है तो इसे दुनिया ज़ुल्म, हिंसा और आतंकवाद क़रार देकर इस्लाम ही को बदनाम करने लगती है और प्रतिरक्षा का जाइज़ हक़ भी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होती।

निस्सन्देह इस्लाम ने प्रतिरक्षा का अधिकार हर व्यक्ति को दिया है, लेकिन ज़ुल्म की बिल्कुल इजाज़त नहीं है। उसकी शिक्षा तो यह है कि इनसान न तो खुद किसी पर हाथ उठाए और न किसी दूसरे को अपने

पर हाथ उठाने दे। ज़ालिम के आगे हथियार न डाल दे बल्कि दृढ़ता से उसका मुक़ाबला करे। वह इस कायरता और कम-हिम्मती को पसन्द नहीं करता कि आदमी अपनी जान, माल और इज़्ज़त-आबरू सब कुछ दुश्मन के हवाले कर दे और कोई प्रतिरोध न करे, परन्तु इसके लिए उसने ऐसी शर्तें, सीमाएँ और पाबन्दियाँ रखी हैं जो पूर्णतः न्याय तथा इनसाफ़ पर आधारित हैं। इस्लामी शरीअत के विशेषज्ञों ने इनको सामने रखकर बड़ी गहनता एवं सूक्ष्मदर्शिता से प्रतिरक्षा से सम्बन्धित नियम बनाए हैं।

प्रतिरक्षा के सन्दर्भ में तरह-तरह के सन्देह और ग़लतफ़हमियाँ पाई जाती हैं, इसलिए इसपर अलग से बहस की जा रही है। यहाँ यह बात सामने रहनी चाहिए कि यह चर्चा व्यक्तिगत प्रतिरक्षा से सम्बन्धित है। राज्य एवं राज्य के बीच जंग यहाँ चर्चा का विषय नहीं है। इसके दिशा-निर्देश दूसरे हैं।

प्रतिरक्षा में जान देना शहादत है

अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* के कथनों (अर्थात हदीसों) में स्पष्ट और साफ़-साफ़ कहा गया है कि इनसान अपने दीन-ईमान, जान-माल, मकान, ज़मीन, जायदाद, बीवी-बच्चों और सगे-सम्बन्धियों की हिफ़ाज़त में जान भी दे सकता है, और यह जान देना शहादत है। शहादत वह महान रुतबा है जो ख़ुशक़िस्मत इनसानों को मिलता है।

हज़रत सईद-बिन-ज़ैद *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> जो अपने माल की हिफ़ाज़त में मारा जाए वह शहीद है, जो अपने दीन की हिफ़ाज़त में मारा जाए वह शहीद है और जो अपनी जान की हिफ़ाज़त में मारा जाए वह शहीद है।
>
> (हदीस : तिर्मिज़ी)

हज़रत अबू-हुरैरा *(रज़ि.)* बयान करते हैं कि एक व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* से सवाल किया कि यदि कोई व्यक्ति मेरा माल छीने तो मुझे क्या करना चाहिए? आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि अपना माल उसे

मत दो। उसने कहा, "यदि वह मुक़ाबले पर उतर आए?" तो आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "तुम भी मुक़ाबला करो।" उसने कहा, "यदि वह मुझे मार डाले?" आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "शहादत पाओगे।" उसने कहा, "यदि मैं उसे क़त्ल कर दूँ?" फ़रमाया, "वह जहन्नम में जाएगा।" (मुस्लिम)

इनसान अपनी जान, माल और इज़्ज़त-आबरू की हिफ़ाज़त के लिए आख़िरी हद तक कोशिश करेगा। ज़रूरत के वक़्त इसके लिए पास-पड़ोस, समाज एवं सरकार की मदद भी प्राप्त करेगा। अतः हदीस की किताब नसई आदि में आता है कि एक व्यक्ति अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और पूछा कि यदि कुछ लोग मेरा माल छीनना चाहें तो मुझे क्या करना चाहिए? आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, उन्हें अल्लाह का हवाला देकर डराओ और समझाओ। उसने अर्ज़ किया, इसपर भी यदि वे न मानें तो क्या किया जाए? आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, आसपास के मुसलमानों से उनके ख़िलाफ़ मदद माँगो। उसने कहा, यदि क़रीब में कोई मुसलमान न हो तो क्या किया जाए? आप *(सल्ल.)* ने कहा, हुकूमत से मदद लो। उसने कहा, यदि हुकूमत तक मैं पहुँच न सकूँ तो फिर क्या करूँ? आप *(सल्ल.)* ने कहा, अपने माल की हिफ़ाज़त के लिए तन्हा खड़े हो जाओ (डट जाओ) यहाँ तक कि या तो तुम्हारी जान चली जाए और तुम शहीदों में शामिल हो जाओ या तुम्हारा माल सुरक्षित रहे। (हदीस : नसई)

उपरोक्त हदीसों से साफ़ ज़ाहिर है कि आदमी अपनी जान-माल, इज़्ज़त-आबरू, बीवी-बच्चों और अपने दीन-ईमान की रक्षा की कोशिश में जान भी दे सकता है, और यह जान देना शहादत है। यह प्रतिरक्षा करनेवाले का अंजाम है। इसके विपरीत यदि हमलावर मारा जाए तो उसका ठिकाना जहन्नम है। यह जज़्बा यदि पैदा हो जाए तो इनसान ज़ुल्म के सामने कभी झुक नहीं सकता। सही बात यह है कि जिस व्यक्ति के अन्दर यह जज़्बा हो उसपर हाथ डालने की कोई हिम्मत भी आसानी से नहीं कर सकता। अल्लामा शौकानी इस सन्दर्भ की हदीसों के परिप्रेक्ष्य में लिखते हैं—

"इस अध्याय की हदीसें स्पष्ट करती हैं कि जो व्यक्ति अपने माल, जान, बाल-बच्चों और दीन की ख़ातिर क़त्ल किया जाए

वह शहीद है, उसका क़त्ल करनेवाला जहन्नम में जाएगा, कारण यह कि पहला सत्य पर है और दूसरा असत्य पर।"

(नैलुल-औतार)

प्रतिरक्षा एक क़ानूनी हक़ है

प्रतिरक्षा का हक़ इस्लाम के निकट हर व्यक्ति का एक क़ानूनी हक़ है। इससे कोई भी व्यक्ति उसे रोक नहीं सकता। फ़ुक़हा का मतैक्य है कि प्रतिरक्षा के मामले में हमलावर को जो नुक़सान होगा उसकी ज़िम्मेदारी प्रतिरक्षा करनेवाले पर न होगी। उसे न तो किसी प्रकार की सज़ा दी जाएगी और न कोई हर्जाना देना पड़ेगा। मुहद्दिस (हदीस के विद्वान) इब्ने-बत्ताल कहते हैं, हदीस में जब यह कहा गया है कि प्रतिरक्षा करनेवाला यदि जान दे दे तो शहीद है, इससे स्वयं यह बात निकलती है कि यदि वह हमलावर को क़त्ल कर दे तो (जिस प्रकार मुजाहिद से दियत या क़िसास नहीं लिया जाता उसी प्रकार) उससे भी क़िसास या दियत नहीं ली जाएगी। (दियत एवं क़िसास, अर्थात क़त्ल का बदला क़त्ल अथवा आर्थिक दण्ड)

स्वयं की प्रतिरक्षा

इमाम शाफ़ई *(रह.)* **फ़रमाते हैं**, "किसी की जान, माल और बीवी-बच्चों पर हमला हो तो उसे **प्रतिरक्षा** का हक़ है। यदि इसके परिणामस्वरूप हमलावर मारा जाए तो प्रतिरक्षा करनेवाले पर दियत या कफ़्फ़ारा वाजिब न होगा।" (इब्ने-हजर, फ़तहुल-बारी : 76/5)

जिस प्रकार किसी व्यक्ति के हमलावर होने पर प्रतिरक्षा का हक़ है, उसी प्रकार यदि कोई समूह हमला करे तो भी यह हक़ प्राप्त रहेगा। इमाम इब्ने-तैमिया *(रह.)* फ़रमाते हैं– "यदि डाकू किसी की जान लेना चाहें तो वह उनका मुक़ाबला करेगा, चाहे उसे प्रतिरक्षा में उन्हें क़त्ल ही क्यों न करना पड़े।" इसपर सबका मतैक्य है।

(फ़तावा इब्ने-तैमिया, 34/242)

माल की प्रतिरक्षा

जान की प्रतिरक्षा की तरह माल की प्रतिरक्षा का अधिकार हर

व्यक्ति को क़ानूनन प्राप्त है। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर *(रज़ि.)* ने एक चोर को देखा तो तलवार खींच ली। इस वाक़िए को बयान करनेवाले का कहना है कि यदि हम उन्हें छोड़ देते और क़त्ल से मना न करते तो उसे वे क़त्ल कर ही डालते।

हज़रत हसन बसरी *(रह.)* से किसी ने पूछा, यदि मेरे घर में चोर घुस आए और उसके हाथ में लोहा (हथियार) हो तो क्या मैं उसे क़त्ल कर दूँ? उन्होंने जवाब दिया कि हाँ! जिस प्रकार भी तुम उसे क़त्ल कर सको, कर दो।

इमाम अहमद *(रह.)* फ़रमाते हैं, यदि डाकुओं का कोई गरोह तुम्हारी जान या तुम्हारा माल लेना चाहे तो तुम अपनी जान और माल की हिफ़ाज़त में उससे लड़ो।

हज़रत इब्ने-सीरीन *(रह.)* फ़रमाते हैं कि मेरे ज्ञान के अनुसार हरूरिया सम्प्रदाय (लुटेरों का समूह) के लोगों और डाकुओं से जंग को किसी ने गुनाह समझकर नहीं छोड़ा। यह बात और है कि कोई व्यक्ति बुज़दिली दिखाए। (अल-मुग़नी)

हनफ़ी मस्लक (पंथ) में है कि–

यदि रात में कोई व्यक्ति किसी के घर में घुसकर माल व चीज़ें चुरा रहा हो या चुराने का इरादा कर रहा हो तो उसे क़त्ल किया जा सकता है। उसी प्रकार माल व चीज़ें लेकर यदि वह फ़रार होने की कोशिश करे तो उसका पीछा करके भी क़त्ल किया जा सकता है। क़त्ल करनेवाले से कोई पूछताछ न होगी।

माल की प्रतिरक्षा के सम्बन्ध में एक सवाल यह है कि क्या आदमी थोड़े से माल के लिए भी प्रतिरक्षा कर सकता है या इसके लिए माल की कोई ख़ास मात्रा होनी चाहिए? इमाम नव्वी *(रह.)* फ़रमाते हैं–

> यदि कोई व्यक्ति नाहक़ किसी का माल लेना चाहे तो उसे वह क़त्ल (भी) कर सकता है, चाहे माल थोड़ा हो या ज़्यादा। इसलिए कि हदीस में इस तरह की कोई सीमा नहीं बल्कि शब्द आम हैं। यही सभी मस्लक के उलमा का मत है। इमाम मालिक *(रह.)* के बहुत से शिष्यों ने कहा है कि माल यदि

> थोड़ा है तो छीननेवाले को क़त्ल नहीं किया जा सकता, परन्तु सही बात वही है जो सभी मस्लक के उलमा ने कही है।
>
> (शरह मुस्लिम)

हनफ़ी मस्लक में एक राय यह है कि माल दस दिरहम से ज़्यादा क़ीमत का होना चाहिए। एक दूसरी राय में माल इतना हो जिससे निसाब (धन की वह मात्रा जिसपर ज़कात अनिवार्य हो जाता है) वाजिब हो जाए तो आदमी उसे बचाने के लिए हमलावर को ज़रूरत पड़ने पर क़त्ल भी कर सकता है। इससे कम हो तो वह हमलावर का मुक़ाबला तो कर सकता है परन्तु उसकी जान लेना सही नहीं है। परन्तु हनफ़ियों के यहाँ भी प्रधानता उसी राय को प्राप्त है कि निसाब से कम माल के लिए भी आदमी हमलावर का मुक़ाबला करने और उसे क़त्ल करने का हक़ रखता है। इसलिए कि हदीसों में इस प्रकार की कोई शर्त नहीं लगाई गई है। (रद्दुल-मुहतार)

इमाम इब्ने-तैमिया *(रह.)* फ़रमाते हैं–

> यदि डाकू ज़बरदस्ती किसी का माल लेना चाहें तो इमामों (विधि-विशेषज्ञों) का इसपर मतैक्य है कि उसे अपना थोड़ा-सा माल भी उनके हवाले करना ज़रूरी नहीं है। वह उन्हें जहाँ तक हो सके आसान तरीक़े से भगाने की कोशिश करे, परन्तु प्रतिरक्षा की इस कार्रवाई में डाकुओं में से कोई मारा जाए तो उसका ख़ून बेकार जाएगा, जिसका माल छीना जा रहा था उससे कोई पूछताछ नहीं होगी। (फ़तावा इब्ने-तैमिया)

सभी मस्लकों की राय के पक्ष में एक बात यह भी कही जा सकती है कि माल की अहमियत वस्तुतः व्यक्तियों पर निर्भर करती है। हो सकता है एक व्यक्ति के लिए दस दिरहम की वह अहमियत हो जो दूसरे के लिए सौ दिरहम की भी न हो।

क्या माल की प्रतिरक्षा वाजिब है?

इमाम इब्ने-तैमिया फ़रमाते हैं–

> माल की प्रतिरक्षा वाजिब नहीं है, इसलिए चाहे तो वह

डाकुओं से मुक़ाबला किए बग़ैर ही अपना माल उनके हवाले कर सकता है। (फ़तावा इब्ने-तैमिया)

इमाम नव्वी *(रह.)* फ़रमाते हैं—

माल की प्रतिरक्षा जाइज़ तो है परन्तु वाजिब नहीं है।

(शरह मुस्लिम)

बहुत-से विद्वानों ने माल की प्रतिरक्षा को वाजिब कहा है। इसका मतलब यह है कि माल की प्रतिरक्षा में यदि हमलावर से मुक़ाबला करना पड़े तो उसे अवश्य मुक़ाबला करना चाहिए। सम्भवतः इन विद्वानों ने हज़रत अबू-हुरैरा *(रज़ि.)* की रिवायत से दलील दी है, जिसमें हमलावर का मुक़ाबला करने और माल उसके हवाले न करने के लिए कहा गया है। (नैलुल-औतार)

परिवार और बीवी-बच्चों की प्रतिरक्षा

इनसान का समाज में निकटतम सम्बन्ध बीवी-बच्चों और परिवारवालों से होता है। उनकी बहुत-सी नैतिक और क़ानूनी ज़िम्मेदारियाँ उसपर होती हैं। उनपर कोई नाज़ुक घड़ी आए तो वह अपनी जान की बाज़ी लगा सकता है और अपना माल लुटा सकता है। उनकी प्रतिरक्षा यदि क़ानूनी सीमा के अन्तर्गत हो तो इस्लाम ने इसकी प्रशंसा की है। एक हदीस में आता है—

"तुममें बेहतर आदमी वह है जो अपने परिवार की प्रतिरक्षा करे, जब तक कि प्रतिरक्षा करते समय वह (ख़ुद) गुनाह न करने लगे।" (हदीस : अबू-दाऊद)

इस हदीस की व्याख्या करते हुए अल्लामा मनावी *(रह.)* कहते हैं—

"......वह परिवारवालों के माल, इज़्ज़त-आबरू और जिस्म व जान पर हमला हो तो उसका जवाब देता और प्रतिरक्षा करता है।...... प्रतिरक्षा करनेवाला उस समय तक प्रशंसनीय है जब तक कि वह इस मामले में वैध सीमा से आगे न बढ़े।"

(मनावी, तैसीर-बिशरहिल-जामे-उस-सग़ीर)

जहाँ तक बीवी-बच्चों की प्रतिरक्षा की क़ानूनी हैसियत का सम्बन्ध है, इसके बारे में अल्लामा नव्वी *(रह.)* कहते हैं—

"इसके वाजिब होने में कोई मतभेद नहीं है।" (शरह मुस्लिम)

इफ़्फ़त व इस्मत (सतीत्व) की प्रतिरक्षा

इफ़्फ़त व इस्मत भी इनसान का एक बुनियादी हक़ है। उसपर हमला हो तो वह आख़िरी हद तक प्रतिरक्षा कर सकता है। इस क्रम में हमलावर को जो नुक़सान पहुँचेगा उसकी ज़िम्मेदारी उसपर न होगी। हनफ़ी मस्लक के अनुसार यदि कोई व्यक्ति किसी औरत के साथ बलात्कार करना चाहे और उसे यक़ीन हो कि चीख़-पुकार या मारपीट से वह नहीं भागेगा तो उसे वह क़त्ल कर सकती है। मारे गए व्यक्ति का ख़ून बेकार जाएगा। यही हक़ कम उम्र लड़के को भी प्राप्त है जिसके साथ व्यभिचार की कोशिश की जाए। (दुर्रुल-मुख़्तार और रद्दुल-मुहतार)

इमाम अहमद *(रह.)* से सवाल किया गया कि यदि कोई व्यक्ति किसी औरत पर बुरे इरादे से हमला करे और वह अपनी इफ़्फ़त (सतीत्व) की रक्षा के लिए उसे क़त्ल कर दे तो क्या हुक्म है? उन्होंने फ़रमाया, यदि औरत को यक़ीन हो जाए कि वह उसकी इस्मतदरी चाहता है तो उसे वह क़त्ल कर सकती है, उससे कोई पूछताछ न होगी। इस सन्दर्भ में उन्होंने हज़रत उमर *(रज़ि.)* के एक फ़ैसले का भी उल्लेख किया कि एक व्यक्ति ने एक औरत के साथ बलात्कार करना चाहा तो उसने पत्थर मारकर उसे हलाक कर दिया। हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने फ़रमाया : ख़ुदा की क़सम इसकी दियत (ख़ून का बदला) नहीं दी जाएगी। (अल-मुग़नी)

क्या इफ़्फ़त व इस्मत (सतीत्व) की प्रतिरक्षा वाजिब है?

अल्लामा इब्ने-क़ुदामा हंबली *(रह.)* कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति किसी औरत के साथ बलात्कार करना चाहे तो उसके लिए प्रतिरक्षा अनिवार्य है। कारण यह कि किसी को इस्मतदरी का मौक़ा देना हराम है। प्रतिरक्षा न करने का मतलब यह होगा कि औरत एक प्रकार से हमलावर को इसका मौक़ा दे रही है। (अल-मुग़नी)

प्रतिरक्षा में सहयोग

किसी की जान, माल, इज़्ज़त-आबरू या बीवी-बच्चों पर हमला हो तो समाज का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि जो व्यक्ति हमलावर को रोक सकता है रोके और मज़लूम की प्रतिरक्षा के लिए जो भी मदद कर सकता हो करे, यह इस्लाम की शिक्षा है। इससे आगे बढ़कर वह इस बात की भी अनुमति देता है कि मज़लूम को बचाने के लिए हमलावर की जान भी लेनी पड़े तो वह ले सकता है। शर्त केवल यह है कि उसका हर क़दम क़ानून की परिधि के अन्दर होना चाहिए।

कोई व्यक्ति किसी की जान और माल पर हाथ डाले या किसी औरत की इज़्ज़त लूटना चाहे तो जिसपर हमला नहीं हुआ है उसे पीड़ितों की मदद के लिए आगे आना चाहिए। इसी प्रकार यदि चोर-डाकू किसी क़ाफ़िले पर हमला करें तो जो लोग क़ाफ़िले में नहीं हैं उन्हें इसकी इजाज़त है कि क़ाफ़िलेवालों की प्रतिरक्षा करें। एक हदीस में है कि "बिगाड़ फैलानेवालों के ख़िलाफ़ मोमिन एक-दूसरे की मदद करते हैं।" यदि (ज़ुल्म के ख़िलाफ़) एक-दूसरे का सहयोग न हो तो लोगों की जान व माल सब कुछ ही लुट सकता है। चोर और डाकू किसी का माल छीन लें और दूसरा उसकी मदद के लिए आगे न बढ़े तो वे एक के बाद एक सबका ही माल छीन ले जाएँगे। इसी तरह दूसरों का मामला है। (अल-मुग़नी)

इमाम अबू-हनीफ़ा के मतानुसार—

> कोई व्यक्ति किसी पर तलवार उठाए और दूसरा व्यक्ति आक्रमणकर्ता को मार डाले तो क़ानूनन उसकी पकड़ नहीं होगी। (दुर्रुल-मुख़्तार और रद्दुल-मुहतार)

परन्तु इसके साथ क़ानून यह भी देखेगा कि अकारण किसी की जान न ली गई हो।

> यदि कोई व्यक्ति हमला करके भाग खड़ा हो, यहाँ तक कि दोबारा उसकी ओर से हमले की आशंका न हो तो जिसपर हमला हुआ है वह या कोई अन्य व्यक्ति हमलावर को क़त्ल

कर दे तो वह मुजरिम क़रार दिया जाएगा और उसे क़िसास में क़त्ल किया जाएगा। (दुर्रुल-मुख़्तार और रद्दुल-मुहतार)

यदि आदमी यह देखे कि कोई व्यक्ति किसी औरत के साथ ज़ोर-ज़बरदस्ती कर रहा है और उसे यक़ीन हो जाए कि वह हल्ला मचाने, डराने-धमकाने या लाठी आदि अहिंसक हथियार इस्तेमाल करने से औरत को नहीं छोड़ेगा तो उसे वह क़त्ल कर सकता है। परन्तु यदि क़त्ल किए बग़ैर उसका भगाना सम्भव हो तो क़त्ल करना सही नहीं होगा।

(दुर्रुल-मुख़्तार और रद्दुल-मुहतार)

यह एक व्यक्ति की बात थी। यदि कोई व्यक्ति किसी जगह पूरी आबादी के ख़िलाफ़ तलवार उठाए और एलानिया लूटमार और मारकाट शुरू कर दे तो इसपर ध्यान न देकर कि उसने किस पर हमला किया और कौन उसके हमले से सुरक्षित रहा, यह सबका ही फ़र्ज़ (कर्त्तव्य) है कि उसे इससे रोकने की कोशिश करें। इसमें किसी प्रकार की सफलता न मिले तो उसे क़त्ल कर दें। जो व्यक्ति उसे क़त्ल करे उसपर दियत या क़िसास नहीं लागू होगी। मशहूर किताब 'हिदाया' के लेखक अल्लामा मरग़ीनानी *(रह.)* कहते हैं—

इसकी एक दलील तो अल्लाह के रसूल (सल्ल.) का यह कथन है कि—

"जिस व्यक्ति ने मुसलमानों के ख़िलाफ़ तलवार खींची उसने अपना ख़ून व्यर्थ किया (उसकी क़ीमत नहीं रही अर्थात उसके क़त्ल पर क़िसास या दियत लागू न होगा)।"

दूसरे यह कि वह इस्लामी स्टेट का बाग़ी है और बग़ावत के कारण उसका ख़ून मासूम नहीं रहा, अतः उसका ख़ून बहाया जा सकता है। तीसरे यह कि उसने अपने क़त्ल पर खुद ही मजबूर कर दिया कि इसके अलावा जान बचाने का कोई रास्ता नहीं छोड़ा। (हिदाया)

इस्लामी रियासत में जो हुक्म मुसलमानों के ख़िलाफ़ तलवार उठाने का है वही हुक्म ज़िम्मियों (इस्लामी रियासत के ग़ैर मुस्लिम नागरिक) पर तलवार उठाने का भी है। (रद्दुल-मुहतार)

इसका मतलब यह है कि जो व्यक्ति ज़िम्मियों के ख़िलाफ़ तलवार उठाता है, चाहे वह मुसलमान ही क्यों न हो यदि क़त्ल किए बग़ैर उसे रोका न जा सके तो ज़रूरी है कि उसे क़त्ल कर दिया जाए।

प्रतिरक्षा करनेवाले पर हमलावर के नुक़सान की ज़िम्मेदारी नहीं

प्रतिरक्षा के समय हमलावर की जान भी जा सकती है। उसका कोई दूसरा नुक़सान भी हो सकता है। यदि यह नुक़सान उसके हमले की वजह से हो तो प्रतिरक्षा करनेवाले से क़िसास या दियत नहीं ली जाएगी।

हज़रत इमरान-बिन-हिसीन *(रज़ि.)* की रिवायत है कि दो व्यक्तियों के बीच झगड़ा हुआ। एक ने दूसरे का हाथ (दाँतों से) काट लिया। उसने अपना हाथ ज़ोर से खींचा तो काटनेवाले के अगले दोनों दाँत टूट गए। उनका यह विवाद अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* की ख़िदमत में पेश हुआ। जिसके दाँत टूटे थे उसने दियत की माँग की। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "तुममें से कोई व्यक्ति किसी का हाथ ऊँट की तरह चबाए तो क्या वह ख़ामोश हो जाए। जाओ, इसकी कोई दियत नहीं है।" (हदीस : बुख़ारी)

इस हदीस से इमाम अबू-हनीफ़ा *(रह.)* इमाम शाफ़ई *(रह.)*, इमाम अहमद *(रह.)* आदि अनेक विद्वानों ने यह दलील दी है कि यदि कोई व्यक्ति किसी का हाथ दाँतों से काटे और उसे छुड़ाने की कोशिश में उसके दाँत टूट जाएँ तो छुड़ानेवाले पर क़िसास या दियत वाजिब (अनिवार्य) न होगी। इसलिए कि यह एक प्रकार से हमलावर से अपनी प्रतिरक्षा है।

दाँत से काटना एक मिसाल है जिसका उपरोक्त हदीस में उल्लेख हुआ है। इससे यह दलील ली गई है कि हमला किसी भी प्रकार का हो आदमी को प्रतिरक्षा का अधिकार है और उसके नतीजे में हमलावर का कोई नुक़सान हो, यहाँ तक कि उसकी जान चली जाए तो भी प्रतिरक्षा करनेवाले पर उसकी कोई ज़िम्मेदारी न होगी।

प्रतिरक्षा का क्रम सरल से कठोर की ओर

माल की प्रतिरक्षा के संदर्भ में हज़रत अबू-हुरैरा *(रज़ि.)* की हदीस इससे पहले गुज़र चुकी है। यह हदीस मुस्नद अहमद में इन शब्दों में बयान की गई है—

> "ऐ अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)*! यदि मेरे माल के साथ ज़्यादती हो (उसे छीनने की कोशिश की जाए) तो मुझे क्या करना चाहिए? आप (सल्ल.) ने फ़रमाया : छीननेवालों को अल्लाह का वास्ता दो। उसने अर्ज़ किया : यदि वे मेरी बात न मानें तो क्या किया जाए? आप (सल्ल.) ने फ़रमाया : उन्हें अल्लाह का वास्ता दो। उसने अर्ज़ किया : फिर भी वे न मानें तो क्या किया जाए? आपने (तीसरी बार) फ़रमाया : उन्हें अल्लाह का वास्ता दो। उसने कहा : इसपर भी वे न मानें तो क्या किया जाए? आप (सल्ल.) ने फ़रमाया : उनका मुक़ाबला करो। यदि तुम मारे गए तो जन्नत में जाओगे और यदि तुमने उसे क़त्ल कर डाला तो वह जहन्नम में जाएगा।" (हदीस : मुस्नद अहमद)

इस हदीस से यह दलील दी गई है कि प्रतिरक्षा में सरल उपाय से कठोर उपाय का क्रम बनाए रखना चाहिए। अर्थात् जो आसान उपाय सम्भव हो वह अपनाना चाहिए। एक उपाय अपर्याप्त अथवा निष्प्रभावी हो तो अपेक्षाकृत कठोर उपाय करना चाहिए। यदि हमलावर चीख़ने-चिल्लाने अथवा हल्ला मचाने से भाग सकता हो तो उसे लाठी मारकर भगाने की कोशिश नहीं की जाएगी। इसी प्रकार उसे लाठी से मारकर भगाया जा सकता हो तो तलवार से उसकी जान नहीं ली जाएगी। अल्लामा शौक़ानी *(रह.)* कहते हैं—

> "प्रतिरक्षा का सबसे पहले आसान तरीक़ा अपनाना चाहिए, फिर उसके बाद अपेक्षाकृत कठोर तरीक़ा अपनाना चाहिए। जब तक जान लिए बिना प्रतिरक्षा की सम्भावना हो तब तक प्रतिरक्षा करनेवाला क़त्ल करने जैसा क़दम नहीं उठा सकता। अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* का सवाल पूछनेवाले को यह हुक्म देना कि मुक़ाबला से पहले वह हमलावर को अल्लाह का वास्ता दे इसी की दलील है।" (नैलुल-औतार)

अल्लामा इब्ने-क़दामा हंबली (रह॰) कहते हैं कि कोई व्यक्ति किसी के घर में घुस पड़े और घरवाले के ललकारने और हल्ला मचाने से वह भाग निकले तो घरवाले को उसकी जान लेने का कोई हक़ नहीं है। इसलिए कि यहाँ उद्देश्य केवल यही है कि वह घर से चला जाए। इसी प्रकार यदि मालूम हो कि लाठी-डंडे के प्रयोग से वह भाग खड़ा होगा तो नुक़्सानदेह हथियार के इस्तेमाल की उसे इजाज़त न होगी। यदि हमलावर को ज़ख़्मी करके बेकार कर दिया जाए और वह हमला करने में सक्षम न रहे तो उसे क़त्ल करने का हक़ न होगा, (इस सावधानी के बावजूद) मुक़ाबले में हमलावर मारा जाए तो उसका ख़ून बेकार जाएगा, प्रतिरक्षा करनेवाला उसका ज़िम्मेदार न होगा। इसका कारण यह है कि इस स्थिति में हमलावर ने स्वयं ही घरवाले को इसपर मजबूर किया कि उसे क़त्ल कर दिया ज़ाए। अथवा इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि उसने आत्म-हत्या की। (विस्तार के लिए देखिए अल-मुग्नी)

हनफ़ी मस्लक (पंथ) में है कि यदि रात में कोई व्यक्ति किसी के घर घुसकर उसका माल व सामान लूटना चाहे तो वह उसे क़त्ल कर सकता है। इसी प्रकार धन-दौलत अथवा सामान लेकर भागे तो उसका पीछा करके भी क़त्ल कर सकता है, इस शर्त के साथ कि क़त्ल के अतिरिक्त अपना माल वापस लेने का कोई उपाय न हो। (हिदाया)

यही बात इन शब्दों में भी कही गई है—

> "चोर का क़त्ल उस वक़्त उसके लिए सही होगा जबकि वह यह न जानता हो कि उसके हल्ला मचाने से चोर उसका माल फेंक देगा, परन्तु यदि यह जानने के बावजूद उसे वह क़त्ल कर दे तो उसपर क़िसास वाजिब होगा।" (रद्दुल-मुहतार)

इस्लामी रियासत में जो व्यक्ति मुसलमानों अथवा ज़िम्मियों के ख़िलाफ़ तलवार उठाए उसका हुक्म इससे पहले बयान हो चुका है। इस सन्दर्भ में हनफ़ी मस्लक में कहा गया है—

> "जो व्यक्ति मुसलमानों के ख़िलाफ़ तलवार उठाए तो प्रतिरक्षा अनिवार्य है, चाहे इसके लिए उसे क़त्ल करना ही क्यों न पड़े। बशर्ते कि किसी और उपाय से उसके नुक़सान की प्रतिरक्षा सम्भव न हो।"

इसका कारण यह बताया गया है कि मूलतः 'नुक़सान से प्रतिरक्षा' वाजिब (अनिवार्य) है, न कि किसी को क़त्ल करना और जान लेना। यदि किसी की जान लिए बिना भी 'नुक़सान से प्रतिरक्षा' संभव हो तो उसकी जान कदापि नहीं ली जाएगी। यह क़दम केवल मजबूरी में ही उठाया जा सकता है। (रद्दुल-मुहतार और दुर्रुल मुख़्तार)

कोई भी क़दम हालात के अनुसार उठाया जाएगा

यह बात कि प्रतिरक्षा करते समय कौन-सा क़दम अथवा तरीक़ा सही एवं क़ानून के तहत होगा और कौन-सा ग़लत एवं ग़ैर-क़ानूनी इसका फ़ैसला हमले के प्रकार और उन हालात को देखते हुए होगा जिनमें हमला हुआ है।

यदि कोई व्यक्ति जान लेने के इरादे से किसी पर तलवार उठाए (या कोई हिंसक हथियार प्रयोग करे) तो उसे अपनी प्रतिरक्षा में हमलावर को क़त्ल करने का हक़ है, चाहे हमला आबादी में हो या ग़ैर आबाद जगह में, रात में हो या दिन में, इसलिए कि इसमें विलम्ब से जान जाने का ख़तरा है। परन्तु यदि लाठी या छुरी या किसी ग़ैर हिंसक हथियार से हमला हो तो देखा जाएगा कि हमला कहाँ हुआ है और किस वक़्त हुआ है? यदि हमला आबादी में हो और दिन में हो तो उसे हमलावर को क़त्ल करने का हक़ न होगा। इसलिए कि वह मदद के लिए दूसरों को बुला सकता है और मदद के लिए पहुँचने तक उसकी जान जाने का ख़तरा नहीं है। परन्तु यदि हमला रात में और किसी सुनसान जगह में हो तो उसे अपनी प्रतिरक्षा में हमलावर को क़त्ल करने का हक़ होगा। इसलिए कि वहाँ किसी मदद का पहुँचना कठिन है। लाठी या डंडा ऐसा हो कि उससे मौत हो सकती हो तो इमाम अबू-यूसुफ़ *(रह.)* और इमाम मुहम्मद *(सल्ल.)* के कथनानुसार यह नहीं देखा जाएगा कि हमला रात में हुआ है या दिन में? (हिदाया)

माल की प्रतिरक्षा में किसी चोर और डाकू को उसी समय क़त्ल किया जा सकता है जबकि यह आशंका हो कि चीख़ने-चिल्लाने से वह माल छोड़कर नहीं भागेगा। यह जानने के बाद भी कि वह डराने-धमकाने और शोर मचाने से भाग खड़ा होगा, उसे क़त्ल कर दिया जाए तो क़ातिल पर क़िसास वाजिब होगा। (दुर्रुल-मुख़्तार और रद्दुल मुहतार)

प्रतिरक्षात्मक कार्रवाई के लिए सुबूत चाहिए

किसी भी प्रतिरक्षात्मक कार्रवाई के लिए सबूत का पाया जाना ज़रूरी है। अल्लामा इब्ने-क़दामा हंबली *(रह.)* कहते हैं–

> "यदि कोई व्यक्ति यह दावा करे कि अमुक व्यक्ति उसके घर में घुस आया था और उसे क़त्ल किए बग़ैर उसे भगाने का कोई उपाय नहीं था तो बग़ैर सुबूत के उसका यह दावा स्वीकार नहीं किया जाएगा और उससे क़िसास लिया जाएगा। इस बात से इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता कि मक़तूल का चोरी-जालसाज़ी का कोई पूर्व रिकार्ड था या नहीं। गवाहों को इस बात की गवाही देनी होगी कि उन्होंने मक़तूल को सामान्य रूप से जाने-पहचाने हथियार (जिनसे किसी की जान ली जा सकती है) लेकर क़ातिल की ओर बढ़ते देखा और क़ातिल ने उसे अपनी प्रतिरक्षा में क़त्ल किया। परन्तु यदि गवाहों ने यह गवाही दी कि हमने उस व्यक्ति को मात्र उसके घर जाते देखा और हथियार का उल्लेख नहीं किया, या हथियार का भी नाम लिया परन्तु हिंसक हथियार के रूप में चिन्हित हथियार का नाम नहीं लिया, तो क़ातिल से क़िसास लिया जाएगा। इसलिए कि आदमी किसी के घर में किसी भी ज़रूरत से प्रवेश कर सकता है। मात्र किसी के घर में प्रवेश कर जाने से उसका ख़ून बहाना जाइज़ नहीं हो जाता।"
>
> (अल-मुग़नी)

परन्तु ऐसी परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं जब चश्मदीद गवाह मौजूद न हों। इस आशंका से कि गवाही देनेवाला कोई मौजूद नहीं है, आदमी प्रतिरक्षा न करे तो उसकी जान एवं माल को ख़तरा उत्पन्न हो सकता है। इस परिस्थिति में यदि आदमी यह सिद्ध कर दे कि जो व्यक्ति घर में घुस आया था उसने उससे हाथापाई की और मुक़ाबला किया तो उसका उसे क़त्ल करना सही होगा। उससे क़िसास नहीं लिया जाएगा, परन्तु यदि वह यह साबित न कर सके तो देखा जाएगा कि जिस व्यक्ति को उसने क़त्ल किया है वह झगड़ा और फ़साद फैलाने में

प्रसिद्ध था या नहीं? यदि उसका पूर्व आपराधिक रिकार्ड नहीं था तो घर के स्वामी से क़िसास लिया जाएगा। यदि उसका आपराधिक रिकार्ड था तो भी गुमान यही कहता है कि उससे क़िसास लिया जाए लेकिन मक़तूल के वारिसों को क़ातिल से दियत दिलवाना ज़्यादा पसन्दीदा है, क्योंकि परिस्थितियों ने क़िसास के बारे में तो सन्देह पैदा कर दिया है, परन्तु कम से कम दियत में कोई सन्देह नहीं है। (रद्दुल-मुहतार)

प्रतिरक्षा की कार्रवाई हमले के समय की जाएगी

प्रतिरक्षा के सन्दर्भ में यह बात सामने रहनी चाहिए कि जिस समय हमला हो, उसी समय प्रतिरक्षा की जाएगी। हमले के बाद प्रतिरक्षा की कार्रवाई का सवाल नहीं पैदा होता।

यदि कोई व्यक्ति हमला करके इस प्रकार पीछे हट जाए कि पुनः उसके हमला करने की आशंका न हो, इसके बाद जिसपर हमला हुआ है वह या कोई अन्य व्यक्ति आगे बढ़कर उसे क़त्ल कर दे तो क़ातिल पर क़िसास वाजिब होगा। इसलिए कि ज्यों ही हमलावर पीछे हटा और हमले से रुक गया तो जैसे हमले से पहले उसका ख़ून बहाना हराम था, अब पुनः उसका ख़ून बहाना हराम हो गया।

हाँ, पीछे हटने के बाद भी यदि वह हथियार लिए हुए है (और उसके दोबारा हमला करने का अन्देशा है) तो उसे क़त्ल किया जा सकता है। (दुर्रुल-मुख़्तार और रद्दुल-मुहतार)

विवेचना का सारांश

इस प्रकार इस्लाम मज़लूम के अन्दर यह साहस और हौसला पैदा करता है कि अपनी जान, माल, इज़्ज़त-आबरू, बाल-बच्चों, परिवार और अपने दीन व ईमान को दूसरों के रहमो-करम पर न छोड़े, बल्कि ज़ोर-ज़बर्दस्ती जिस ओर से भी हो उसका मर्दानगी के साथ मुक़ाबला करे। वह समाज को यह शिक्षा देता है कि अत्याचार से प्रतिरक्षा की कार्रवाई में प्रतिरक्षा-पक्ष का साथ दे और अत्याचार को मिटाने तथा मज़लूम को बचाने की हर सम्भव कोशिश करे। साथ ही अत्याचार को

रोकने के लिए मज़लूम और उसके साथ पूरा समाज जो भी क़दम उठाए उसे इस्लाम क़ानूनी रूप से सही ठहराता है ताकि ज़ुल्म के ख़िलाफ़ लड़नेवाले क़ानूनी दृष्टि से स्वयं को असहाय एवं विवश महसूस न करें। इसी के साथ वह इस बात की भी निगरानी करता है कि ख़ुद मज़लूम किसी कार्रवाई में ज़ालिम न बनने पाए और प्रतिरक्षा के नाम पर ज़ुल्म न करने लगे।

☆☆☆

मज़हब की आज़ादी का हक़

इस्लाम ने इनसान को जो अधिकार दिए हैं उनके सन्दर्भ में यह सवाल बार-बार उभरता है कि इस्लामी रियासत में ग़ैर-मुस्लिम को क्या अधिकार प्राप्त होंगे? इस सवाल को कई बार इस प्रकार पेश किया जाता है कि जैसे वे इस्लामी रियासत में अपनी पृथक पहचान खो बैठेंगे और उन्हें जबरन इस्लामी आदेशों का पाबन्द बनाया जाएगा। यहाँ इस सन्दर्भ में इस्लाम के दृष्टिकोण को स्पष्ट करने की कोशिश की जाएगी।

आस्था और मज़हब के मामले में कोई ज़ोर-ज़बर्दस्ती नहीं

इस्लाम इस रूप में हमारे सामने आता है कि वह अल्लाह का उतारा हुआ दीन (मज़हब/जीवन-पद्धति) है। अब दुनिया में वही अकेला सच्चा दीन है। इसके अतिरिक्त जितने मज़हब हैं यद्यपि वे सच्चाई से ख़ाली नहीं हैं, उनमें सच्चाई का अंश हो सकता है, परन्तु वे सत्य-असत्य का घालमेल बनकर रह गए हैं। इसलिए उनपर विश्वास नहीं किया जा सकता। इस्लाम ने अपने इस दृष्टिकोण को दलीलों के साथ पेश किया है परन्तु किसी को इसपर मजबूर नहीं किया है, बल्कि इसे स्वीकार करने अथवा न करने की आज़ादी प्रदान की है।

नबी *(सल्ल.)* के अन्दर यह स्वाभाविक इच्छा थी कि सब लोग इस्लाम को अल्लाह के दीन के रूप में स्वीकार कर लें परन्तु अल्लाह ने कहा कि आपकी यह इच्छा पूरी नहीं हो सकती। यह अल्लाह की इच्छा के ख़िलाफ़ है। वह चाहता तो स्वयं ही सबको अपने दीन का पाबन्द बना देता, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया है, बल्कि इनसान को आज़ादी दी है कि वे उसके दीन को स्वीकार करें अथवा न करें। जब उसने आज़ादी दी है तो कोई भी व्यक्ति उसे क़बूल करने के लिए किसी को विवश नहीं कर सकता। क़ुरआन के शब्दों में—

> "यदि तुम्हारा रब चाहता तो ज़मीन के सारे के सारे लोग ईमान ले आते। तो क्या तुम लोगों को मजबूर करोगे कि वे ईमानवाले हो जाएँ?" (क़ुरआन, 10:99)

सूरा अनआम में यही बात और प्रभावशाली अन्दाज़ में कही गई है—

> "यदि तुमपर उनका ध्यान न देना कष्टदायक लगे तो तुमसे हो सके तो ज़मीन में कोई सुरंग तलाश करो या आसमान में कोई सीढ़ी लगाओ और उनके पास कोई निशानी ले आओ। ऐसा कर देखो। यदि अल्लाह चाहता तो उन सबको हिदायत (सन्मार्ग) पर इकट्ठा कर देता। अतः तुम कदापि नादानों में से न बनो। हमारी बातें वही मानेंगे जो सुनते हैं, शेष जो मुर्दा हैं अल्लाह उन्हें (क़ियामत में) उठाएगा, फिर वे उसी की ओर लौटाए जाएंगे।" (क़ुरआन, 6:35-36)

अल्लाह का स्पष्ट एलान है—

> "दीन के मामले में कोई ज़ोर-ज़बर्दस्ती नहीं है। हिदायत (सीधा रास्ता), अंधकार एवं गुमराही से पृथक स्पष्ट हो चुकी है। अतः जो व्यक्ति ताग़ूत (गुमराही) का इनकार करे और अल्लाह पर ईमान ले आए तो उसने मज़बूत सहारा थाम लिया जो टूटनेवाला नहीं है। अल्लाह सुननेवाला और जाननेवाला है।" (क़ुरआन, 2:256)

इसके साथ इस्लाम यह भी चाहता है कि जब उसने दीन और मज़हब के मामले में ज़ोर-ज़बर्दस्ती नहीं रखी है, तो ख़ुद उसकी राह में भी कोई रुकावट न डाली जाए। जो व्यक्ति इसे स्वीकार करना चाहे आज़ादी से स्वीकार कर ले, उसकी राह रोकना और उसपर प्रतिबन्ध लगाना उसकी वैचारिक स्वतन्त्रता पर चोट है। एक व्यक्ति दुनिया की किसी भी जीवन-पद्धति को स्वीकार करने का हक़ रखता है, तो उचित एवं तार्किक बात यह है कि उसे इस्लाम की जीवन-पद्धति को अपनाने का भी हक़ मिलना चाहिए। परन्तु इस्लाम के विरोधी इस सम्बन्ध में यह रवैया नहीं अपनाते और वैचारिक स्वतन्त्रता के हक़ को कुचलते और ज़ोर-ज़बर्दस्ती के ताले इनसानों पर लगाते हैं। एक ही मामले में दो अलग-अलग मापदण्ड अपनाने का कोई औचित्य नहीं है। इस्लाम ने कहा कि यह प्रतिबन्ध और ज़ोर-ज़बर्दस्ती ख़ुदा के निकट अत्यन्त अप्रिय एवं निन्दनीय है। उसकी पकड़ से वे क़ियामत के दिन बच नहीं सकते।

> "बेशक जिन लोगों ने खुद कुफ़्र का रास्ता अपनाया और दूसरों को अल्लाह के रास्ते से रोका, वे गुमराही में बहुत दूर जा पड़े। जिन लोगों ने कुफ़्र (इनकार) का रास्ता अपनाया और (ईमानवालों पर) ज़ुल्म किया अल्लाह उन्हें कदापि माफ़ नहीं करेगा। और उन्हें जहन्नम के रास्ते के अतिरिक्त और कोई रास्ता दिखाई नहीं देगा। उसमें वे हमेशा रहेंगे। ऐसा करना अल्लाह के लिए आसान है।" (क़ुरआन, 4:167-169)

क़ुरआन ने पैग़म्बरों और ख़ुदापरस्त इनसानों का इतिहास पेश करते हुए बताया है कि उन्हें विरोधियों की ओर से अल्लाह के दीन के अनुसार अमल करने और उसे अल्लाह के बन्दों के सामने पेश करने की इजाज़त नहीं दी गई। उन्हें इस्लाम का आह्वान करने तथा उसकी ओर बुलाने का हक़ देने से इनकार किया गया और लोगों को उसे क़बूल करने से जबरन रोकने की कोशिश की गई। हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* को दीन की दावत देने ही के जुर्म में आग में डाला गया। हज़रत मूसा *(अलैहि॰)* के क़त्ल का मशविरा होने लगा तो अल्लाह के एक बन्दे ने उनके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई।

> "क्या तुम क़त्ल करोगे एक ऐसे व्यक्ति को जो कहता है कि मेरा 'रब' अल्लाह है, जबकि वह तुम्हारे रब की ओर से खुली निशानियाँ लेकर आया है। यदि वह झूठा है तो उसका वबाल (घाटा) उसी पर होगा और यदि वह सच्चा है तो (जिस दुनिया व आख़िरत के) अज़ाब की वह धमकी दे रहा है, उसका एक हिस्सा तुमपर आएगा। बेशक अल्लाह राह नहीं दिखाता उस व्यक्ति को जो हद से गुज़र जानेवाला और अत्यंत झूठा है।"
>
> (क़ुरआन, 40:28)

हज़रत मूसा *(अलैहि॰)* ही का वाक़िआ है कि उनकी दावत और उनके मोजिज़ों (ईश्वरीय चमत्कारों) के मुक़ाबले में जादूगर बुलाए गए। परन्तु जल्द ही जादूगरों पर हक़ीक़त खुल गई कि हज़रत मूसा *(अलैहि॰)* सत्य पर हैं, उनके चमत्कार ईश्वरीय हैं, जादूगरी के करतबों से उनका मुक़ाबला नहीं किया जा सकता। वे हज़रत मूसा *(अलैहि॰)* पर ईमान ले आए। इसपर फ़िरऔन (तत्कालीन सम्राट जिसके दरबार में मुक़ाबला

हुआ) तैश में आ गया, और उसका क्रोध इतना भड़का कि उसने उनके हाथ-पैर काट देने और सूली पर चढ़ा देने का हुक्म जारी कर दिया। उन अल्लाह के बन्दों ने सब कुछ सब्र से बर्दाश्त किया।

> "उन्होंने कहा, हमें तो अपने रब की ओर लौट कर जाना ही है। तुम मात्र इस बात पर बदला ले रहे हो कि हम अपने रब की आयतों (निशानियों) पर, जब वे हमारे सामने आईं, ईमान ले आए। ऐ हमारे रब! हमपर सब्र नाज़िल फ़रमा और हमें इस दशा में मौत दे कि हम मुस्लिम (आज्ञाकारी) हों।"
>
> (क़ुरआन, 7:125-126)

क़ुरआन ने उख़दूदवालों का क़िस्सा बयान किया है कि उन्हें मात्र इस जुर्म में दहकती आग में फेंक दिया गया कि एक ख़ुदा पर, जो ज़मीन व आसमान का मालिक है, वे ईमान रखते हैं।

> "मारे गए खंदक़ (खोदने) वाले, जिसमें बहुत से ईंधन की आग थी। जबकि वे उसके पास बैठे हुए थे। वे ईमानवालों के साथ जो कुछ कर रहे थे उसे देख रहे थे। उन्होंने ईमानवालों से मात्र इस वजह से बदला लिया कि वे अल्लाह पर ईमान रखते थे जो प्रभुत्वशाली एवं प्रशंसनीय गुणों का स्वामी है, जिसके पास आसमानों और ज़मीन की मिल्कियत है, और अल्लाह हर चीज़ को देख रहा है।" (क़ुरआन, 85:4-9)

असहाबे-कहफ़, जो चन्द नौजवानों की एक टोली थी, को इसकी इजाज़त नहीं थी कि वे अपने ईमान को प्रकट करें। वे बस्ती छोड़कर एक ग़ार (गुफा) में पनाह लेने पर मजबूर हो गए। अल्लाह ने अपनी क़ुदरत (सामर्थ्य) से ग़ार में कई सौ साल तक उन्हें सुलाए रखा। जब वे अपनी लम्बी नींद से जागे तो कहने लगे कि हममें से एक आदमी सावधानीपूर्वक बाज़ार जाए और खाने की कोई चीज़ ले आए। इस सावधानी की वजह वे यह बयान करते हैं—

> "यदि वे तुमपर क़ाबू पा लें तो वे तुम्हें संगसार करके छोड़ देंगे या तुम्हें अपने दीन में लौटा ले जाएंगे। यदि ऐसा हुआ तो तुम कभी फ़लाह (भलाई) न पाओगे।" (क़ुरआन, 18:20)

इस घटना से अन्दाज़ा किया जा सकता है कि वे किन नाज़ुक परिस्थितियों से गुज़र रहे थे और उनके साथ कितना कठोर रवैया अपनाया गया था। इस्लाम इस तरह के ग़लत रवैये या Persecution का विरोधी है।

अल्लाह के रसूलों का सम्मान

इस दुनिया में जब से इनसान का अस्तित्व है, अल्लाह की ओर से वह्य द्वारा मार्गदर्शन और रसूलों का आना जारी है। क़ुरआन ने स्पष्ट कहा है कि हर ज़माने और हर क़ौम में अल्लाह के रसूल आते रहे हैं। क़ुरआन के शब्दों में—

> "बेशक हमने आपको सच्चे दीन के साथ ख़ुशख़बरी देनेवाला और डरानेवाला बनाकर भेजा है। कोई उम्मत (क़ौम) ऐसी नहीं है जिसमें डरानेवाला न आया हो।" (क़ुरआन, 35:24)

> "आप (पैग़म्बर मुहम्मद) तो बस लोगों को (ग़लत आचरण के दुष्परिणाम से) डरानेवाले हैं, और हर क़ौम में एक मार्गदर्शक गुज़रा है।" (क़ुरआन, 13:7)

अल्लाह के रसूलों में से कुछ का क़ुरआन में उल्लेख हुआ है और कुछ का नहीं है। क़ुरआन के शब्दों में—

> "हमने आप (पैग़म्बर मुहम्मद) से पहले भी रसूल भेजे हैं। उनमें से कुछ का हाल हमने आपको सुनाया है और कुछ का आपको नहीं सुनाया।" (क़ुरआन, 40:78)

यही बात सूरा निसा की आयत-64 में कुछ नबियों का उल्लेख करने के बाद कही गई है।

क़ुरआन के अनुसार एक मुसलमान के लिए अल्लाह के सभी पैग़म्बरों पर ईमान रखना और उन्हें सत्य मानना ज़रूरी है। जिन पैग़म्बरों का क़ुरआन ने नाम लेकर उल्लेख किया है वह उनके पैग़म्बर होने की गवाही देता है और जिनके पैग़म्बर होने का क़ुरआन में उल्लेख नहीं है उनपर भी मुसलमान आंशिक रूप से ईमान रखता है। उन पैग़म्बरों की जो मूल शिक्षाएँ थीं, क़ुरआन उनका समर्थन एवं पुष्टि करता है और जिन शिक्षाओं में काट-छाँट या बढ़ोत्तरी की गई है, क़ुरआन उनका सुधार करता है।

एक मुसलमान अपने ईमान और आस्था की दृष्टि से किसी भी पैग़म्बर का अपमान नहीं कर सकता।

ज़िम्मियों के अधिकार

इस्लामी रियासत ज़िम्मियों (ग़ैर-मुस्लिम प्रजा) की जान-माल और इज़्ज़त-आबरू की हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदार है। उनके साथ ज़्यादती की किसी मुस्लिम या ग़ैर-मुस्लिम को इजाज़त नहीं दी जाएगी। उनपर किसी ओर से हमला हो तो इस्लामी रियासत उसकी प्रतिरक्षा करेगी। यदि वे दुश्मन के क़ब्ज़े में चले जाएँ और उन्हें उस ज़माने के प्रचलन के अनुसार ग़ुलाम बना लिया जाए तो इस्लामी रियासत उन्हें आज़ाद कराएगी और वे उसके ग़ुलाम नहीं बल्कि आज़ाद होंगे। सहीह बुख़ारी के एक अध्याय का शीर्षक ही यह है :

> "ज़िम्मियों की ओर से जंग की जाएगी और उन्हें ग़ुलाम नहीं बनाया जाएगा।"

इसके समर्थन में इमाम बुख़ारी ने ज़िम्मियों से सम्बन्धित हज़रत उमर *(रज़ि.)* की नसीहत नक़ल की है। (हदीस : बुख़ारी)

अल्लामा इब्ने-क़ुदामा हंबली *(रह.)* इस परिस्थिति के बारे में लिखते हैं कि ज़िम्मी को ग़ुलाम नहीं बनाया जाएगा और उनके अधिकार पूर्ववत रहेंगे। (अल-मुग़नी)

एक अन्य स्थान पर कहते हैं—

> "जब किसी के ज़िम्मी होने का समझौता हो जाए तो इमाम के लिए उसका समर्थन करना ज़रूरी है ताकि मुसलमान या मुसलमानों से संघर्षशील पक्ष या कोई अन्य ज़िम्मी उसके साथ ज़्यादती न करें।" (अल-मुग़नी)

व्यक्तिगत क़ानूनों पर अमल का हक़

इस्लामी रियासत में हर मज़हब के माननेवालों को अपने मज़हब पर अमल की आज़ादी होगी, जिनमें इबादत, पूजा-पाठ, विवाह-तलाक़, जीवन-मरण के अवसर की रस्में एवं अन्य व्यक्तिगत तथा नागरिक मामले सम्मिलित हैं। उनके इन मामलात में इस्लामी रियासत हस्तक्षेप

नहीं करेगी। इसके लिए उनकी पृथक अदालतें भी बनाई जा सकती हैं। हाँ, यदि वे किसी मामले में इस्लामी अदालत की ओर आते हैं तो वह उनके क़ानून के तहत नहीं बल्कि अपने क़ानून के तहत फ़ैसला करेगी।

मज़हब पर वार्ता हो सकती है

दीन व मज़हब की सत्यता पर गम्भीर वार्ता हो सकती है। इसपर बहस-मुबाहिसा और वैचारिक आदान-प्रदान की भी इजाज़त होगी। क़ुरआन ने इस मामले में 'जिदाले-हसन' का शब्द प्रयोग किया है जिससे तात्पर्य है, अच्छे तरीक़े से बहस-मुबाहिसा करना।

"उनसे बेहतर तरीक़े से मुजादिला (बहस-मुबाहिसा) करो।"

(क़ुरआन, 16:125)

जिदाले-हसन यह है कि दलीलों के द्वारा अपनी बात रखी जाए और अपने पक्ष की सच्चाई को साबित करने की कोशिश की जाए। मज़हब पर वार्ता के नाम पर घृणा और नफ़रत का वातावरण बनाना और लड़ाई-झगड़े का बाज़ार गर्म करना मना है।

इस संवेदनशील मामले में यह निर्देश भी दिया गया है कि मजलिस (सभा) में समझने-समझाने की जगह प्रतिपक्ष की ओर से बात को उलझाने और उसे ग़लत दिशा देने की कोशिश होने लगे तो मजलिस छोड़ दी जाए।

> "जब तुम उन लोगों को देखो जो हमारी आयतों में उलझे चले जा रहे हैं, तो उनसे रुख़ फेर लो यहाँ तक कि वे किसी दूसरी बात में लग जाएँ। यदि शैतान तुम्हें इससे भूल में डाल दे तो याद आने के बाद ज़ालिमों के साथ मत बैठो।"

(क़ुरआन, 6:68)

मज़हब पर विचार व्यक्त करने के लिए, इससे अधिक उचित एवं सभ्य तरीक़े की कल्पना मुश्किल ही से की जा सकती है।

मज़हब पर वार्ता की सीमाएँ

मज़हब पर वार्ता हो तो अल्लाह, उसके रसूलों, उसकी उतारी हुई किताबों और मज़हब के सम्मानित और प्रतिष्ठित व्यक्तियों का पूरा-पूरा

सम्मान एवं आदर होना चाहिए। उनकी शान में गुस्ताख़ी एक दण्डनीय अपराध है, जिसमें लिप्त पाए जाने पर इस्लामी रियासत क़ानूनी कार्रवाई करेगी।

ग़र्फ़ा-बिन-हारिस *(रज़ि.)* सहाबी हैं। वे मिस्र के मन्दक़ोन नामक एक नसरानी (ईसाई) के पास से गुज़रे। उन्होंने उसे इस्लाम की दावत दी। वह नबी *(सल्ल.)* की शान में अपशब्द बकने लगा। यह बात अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* (तत्कालीन स्थानीय गवर्नर) तक पहुँचाई गई। उसे उन्होंने तलब किया। ग़र्फ़ा *(रज़ि.)* से भी कहा गया। हमारा इनसे समझौता है हमें उसकी पाबन्दी करनी चाहिए। इसपर ग़र्फ़ा *(रज़ि.)* ने कहा कि अल्लाह माफ़ फ़रमाए, समझौता इसलिए नहीं है कि वे हमें अल्लाह और रसूल का अपमान करके कष्ट पहुँचाएँ। हमने उन्हें यह हक़ दिया है कि कलीसाओं (गिरजाघरों) में जो चाहे करें, इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं होगा। उनपर ताक़त से ज़्यादा बोझ नहीं डाला जाएगा, उनकी हिफ़ाज़त के लिए आवश्यकता पड़ने पर जंग भी की जाएगी और उन्हें अपने धार्मिक निर्देशों पर अमल की इजाज़त होगी। हाँ, यदि वे हमारे पास मुक़द्दमा लाएँ तो हम अल्लाह की किताब के अनुसार फ़ैसला करेंगे। अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* ने ग़र्फ़ा *(रज़ि.)* का समर्थन किया और कहा आपने सही फ़रमाया।

उलमा का मतैक्य है कि इस्लाम या किसी दूसरे आसमानी मज़हब और अल्लाह के रसूलों का अपमान मुस्लिम या ग़ैर-मुस्लिम कोई भी करे, उसके ख़िलाफ़ क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी। पैग़म्बर को बुरा-भला कहने की सज़ा क़त्ल तो नहीं है अलबत्ता यदि कोई व्यक्ति बार-बार ऐसी हरकत करे तो उसे क़त्ल की सज़ा दी जा सकती है।

देखने में यह बहुत कठोर नीति मालूम होती हैं, परन्तु मज़हबों के प्रति सम्मान एवं आदर-भाव को बचाए रखने के लिए ये ज़रूरी हैं, वरन् आशंका है कि मज़हब मज़ाक़ और हँसी-ठिठोली का विषय बनकर रह जाएँगे।

अरब के मुशरिक (बहुदेववादी एक ईश्वर को छोड़ अनेक ईश्वर की उपासना करनेवाले) रिसालत (ईशदूतत्त्व) में आस्था नहीं रखते थे।

उनके पास कोई आसमानी किताब नहीं थी। उन्होंने तौहीद (एकेश्वरवाद) की जगह शिर्क (बहुदेववाद) और बुतपरस्ती (मूर्तिपूजा) अपना रखी थी। इस्लाम ने अपने माननेवालों को हिदायत दी है कि इस संवेदनशील और नाज़ुक विषय पर उनसे वार्ता इस तरीक़े से हो कि उनकी धार्मिक भावना को ठेस न लगे और वे उग्र रूप न धारण कर लें, अन्यथा इसकी प्रतिक्रिया होगी और बात इस हद तक बढ़ जाएगी कि वे ख़ुदा की शान में ही गुस्ताख़ी करने लगेंगे।

> "तुम लोग बुरा भला न कहो उन माबूदों (उपास्यों) को जिन्हें ये ख़ुदा को छोड़कर पुकारते हैं कि वे दुश्मनी में बग़ैर-इल्म के अल्लाह को बुरा-भला कहने लगेंगे। इसी तरह हमने हर क़ौम के लिए उनके कर्म सुहावने बना दिए हैं। फिर उन्हें उनके रब की ओर लौटना है। अतः वह उन्हें बता देगा कि वे क्या कर रहे थे।" (क़ुरआन, 6:108)

इससे यह दलील लेना ग़लत नहीं होगा कि वे मज़हब जो आसमानी मज़हब होने का दावा नहीं करते अथवा जिनके आसमानी मज़हब होने का कोई सुबूत नहीं है, उनके महापुरुषों या उनके उपास्यों की तौहीन (अपमान) करना और उनका मज़ाक़ उड़ाना दण्डनीय अपराध क़रार दिया जा सकता है।

— समाप्त —